

اَلَمْ ۙ ذٰلِكَ الْكِتٰبُ لَا رَيْبَ فِيْهِ هُدًى لِّلْمُتَّقِيْنَ ۝۲ اَلَّذِيْنَ
 يُؤْمِنُوْنَ بِالْغَيْبِ وَيُقِيْمُوْنَ الصَّلٰوةَ وَمِمَّا رَزَقْنٰهُمْ
 يُنْفِقُوْنَ ۝۳ وَالَّذِيْنَ يُؤْمِنُوْنَ بِمَا اُنْزِلَ اِلَيْكَ وَمَا اُنْزِلَ مِنْ
 قَبْلِكَ وَبِالْآخِرَةِ هُمْ يُوقِنُوْنَ ۝۴ اُولٰٓئِكَ عَلَىٰ هُدًى مِّنْ
 رَبِّهِمْ ۖ اُولٰٓئِكَ هُمُ الْمُفْلِحُوْنَ ۝۵ اِنَّ الَّذِيْنَ كَفَرُوْا سَوَآءٌ
 عَلَيْهِمْ ءَاذَنَرْتَهُمْ اَمْ لَمْ تُنذِرْهُمْ لَا يُؤْمِنُوْنَ ۝۶ خَتَمَ اللّٰهُ
 عَلَىٰ قُلُوْبِهِمْ وَعَلَىٰ سَمْعِهِمْ وَعَلَىٰٓ اَبْصَارِهِمْ غِشٰوَةٌ وَلَهُمْ
 عَذَابٌ عَظِيْمٌ ۝۷

Theme	
Al-Quran is free from all doubts. It is a guide for the God-conscious. Warning is of no avail for those who reject faith.	अल-कुरआन हर किसम के शक से पाक है। यह मुत्तकियों के लिए हिदायत है। जो लोग ईमान का इनकार करते हैं, उनके लिए चेतावनी किसी काम की नहीं।
Tarjuman	
Alif Lam Meem. This is the Book (the Quran) in which there is no doubt. (Since its author, Allah, the Creator of the universe, possesses complete and perfect knowledge, there is no room for doubt about its contents.) It is a guidance for the God	अलिफ़-लाम-मीम यह अल्लाह की किताब है, इसमें कोई शक नहीं हिदायत है उन परहेजगार लोगों के लिए जो गैब पर ईमान लाते हैं, नमाज कायम करते हैं, जो रिज्क हमने उनको दिया है, उसमें खर्च करते हैं, जो किताब तुमपर नाजिल की गई है (यानी कुरआन) और जो किताबें तुमसे पहले

conscious, who believe in the Unseen, establish Salah (five regular daily prayers) and spend in charity out of what We have provided for their sustenance; who believe in this Revelation (the Quran) which is sent to you (O Muhammad) and the Revelations which were sent before you (Torah, Psalms, Gospel) and firmly believe in the Hereafter. They are on true Guidance from their Rabb and they are the ones who will attain salvation. Surely, those who reject Faith; it is the same, whether you warn them or you do not, they will not believe. Allah has sealed their hearts and their hearing; on their eyes there is a veil, and there is a grievous punishment for them.	नाजिल की गई थीं उन सबपर ईमान लाते हैं, और आखिरत पर यकीन रखते हैं। ऐसे लोग अपने रब की तरफ़ से राहे-रास्त पर हैं और वही फ़लाह पानेवाले हैं। जिन लोगों ने (इन बातों को तसलीम करने से) इनकार कर दिया, उनके लिए यकसाँ है, खाह तुम उन्हें ख़बरदार करो या न करो, बहरहाल वे माननेवाले नहीं हैं। अल्लाह ने उनके दिलों और उनके कानों पर मुहर लगा दी है और आँखों पर परदा पड़ गया है। वे सख़्त सज़ा के मुसतहिक हैं।
Tafsir	
Introduction	
We will first mention its revelation, excellence and summarize its contents. We will do that with each surah.	हम पहले उसकी नुज़ूल, फ़ज़ीलत और उसके मज़ामीन का ख़ुलासा बयान करेंगे। हम हर सूरात के साथ ऐसा ही करेंगे।

Surat al-Baqarah is Madinan and different parts of it were revealed at various times. It is said that it was the first surah to be revealed in Madinah except for Allah's words <i>Have fear of a Day when you will be returned to Allah</i>. That was the last ayah to be revealed and it was revealed on the Day of Sacrifice during the Farewell Hajj at Mina. The ayahs about usury were also numbered among the last ayahs to be revealed of the Quran.	सूरह अल-बक़रह मदनी सूरत है, और उसके मुख्तलिफ़ हिस्से मुख्तलिफ़ औक़ात में नाज़िल हुए। कहा जाता है कि यह मदीना में नाज़िल होने वाली पहली सूरत थी, सिवाए अल्लाह तआला के इस फ़रमान के: "और उस दिन से डरो जिसमें तुम अल्लाह की तरफ़ लौटाए जाओगे।" यह आखिरी आयत थी जो नाज़िल हुई, और यह मिना में हज्जतुल विदा के दौरान यौम-ए-नहर के दिन नाज़िल हुई। सूद के बारे में नाज़िल होने वाली आयात भी कुरआन की आखिरी नाज़िल होने वाली आयात में शुमार की जाती हैं।
The excellence of this surah is unsurpassed and the reward for reciting it is immense. It is called the Pavilion (<i>fustat</i>) of the Quran. Khalid ibn Madan said that. That is due to its greatness, splendour and the great number of rulings and warnings it contains. 'Umar spent twelve years learning it, its <i>fiqh</i> and contents and his son spent eight years doing that. Ibn al-Arabi said, 'I heard one of our shaykhs say, "It contains a thousand commands,	इस सूरत की फ़ज़ीलत बेमिसाल है और इसकी तिलावत का अज़्र बहुत अज़ीम है। इसे कुरआन का "ख़ैमा" (<i>फ़ुस्तात</i>) कहा जाता है। यह बात ख़ालिद बिन मअदान रह° ने कही है। इसकी वजह इसकी अज़मत, शान व शौकत, और इसमें मौजूद अहकाम और तनबीहात की कसरत है। हज़रत उमर रज़ि° ने इस सूरत, उसके फ़िक्ह और मज़ामीन को सीखने में बारह साल सर्फ़ किए, और उनके बेटे ने इसमें आठ साल लगाए। इब्न अल-अरबी रह° ने कहा: "मैंने अपने एक शैख़ को यह कहते हुए सुना: 'इसमें एक हज़ार अहकाम, एक

a thousand prohibitions, a thousand wisdoms and a thousand reports.”” The Messenger of Allah ﷺ sent out an expedition, consisting a number of men, and he put the youngest of them in charge of it because he knew Surat al-Baqarah. He told him, “Go! You are their commander.” At-Tirmidhi transmitted this from Abu Hurayrah and said that it is sound. Muslim related from Abu Umamah al-Bahili: ‘I heard the Messenger of Allah ﷺ say, “Read Surat al-Baqarah. Learning it is a blessing, abandoning it is a cause of regret, and sorcerers (<i>batalah</i>) are impotent before it.”” Muawiyah said that he heard that <i>batalah</i> are sorcerers.	हज़ार ममानअतें, एक हज़ार हिकमतें और एक हज़ार खबरें हैं।’ रसूलुल्लाह ﷺ ने एक लश्कर रवाना फ़रमाया जिसमें कई आदमी थे, और आप ﷺ ने उनमें सबसे कम उम्र शख्स को उस लश्कर का अमीर मुकर्रर फ़रमाया, क्योंकि उसे सूरह अल-बकरह याद थी। आप ﷺ ने उससे फ़रमाया: “जाओ! तुम उनके अमीर हो।” इमाम तिरमिज़ी ने यह रिवायत हज़रत अबू हुरैरह रज़ि° से नक़ल की है और कहा है कि यह हदीस सहीह है। इमाम मुस्लिम ने अबू उमामा बाहिली रज़ि° से रिवायत किया है कि मैंने रसूलुल्लाह ﷺ को यह फ़रमाते हुए सुना: “सूरह अल-बकरह पढ़ा करो, क्योंकि उसका सीखना बरकत है, उसको छोड़ देना बाइस-ए-हसरत है, और जादूगर उसके मुक़ाबले में बेबस रहते हैं।” मुआविया रज़ि° ने कहा कि उन्होंने सुना है कि “बतलह” से मुराद जादूगर हैं।”
It is also related from Abu Hurayrah that the Messenger of Allah ﷺ said, ‘Do not turn your houses into graveyards. Shaytan flees from a house in which Surat al-Baqarah is recited.’ Ad-Darimi related that Ibn Masud said, ‘There is no	हज़रत अबू हुरैरह रज़ि° से भी रिवायत है कि रसूलुल्लाह ﷺ ने फ़रमाया: “अपने घरों को क़ब्रिस्तान न बनाओ। बेशक शैतान उस घर से भाग जाता है जिसमें सूरह अल-बकरह पढ़ी जाती है।” इमाम दारिमी रह° ने रिवायत किया है कि हज़रत इब्न मसऊद रज़ि° ने फ़रमाया:

house, in which Surat al-Baqarah is recited, but that Shaytan leaves it breaking wind.’ The Prophet ﷺ also said, ‘Everything has a hump, and the hump of the Quran is Surat al-Baqarah. Everything has a core, and the core of the Quran is the Mufasssal.’ In <i>Sahih</i> of al-Busti, Sahl ibn Sad reported that the Messenger of Allah ﷺ said, ‘Everything has a hump, and the hump of the Quran is Surat al-Baqarah. If someone recites it in his house at night, Shaytan will not enter his house for three nights. If someone recites it during the day, Shaytan will not enter his house for three days.’ Al-Busti says what is meant are the rebellious shaytans.	“जिस घर में सूरह अल-बक़रह पढ़ी जाती हो, वहाँ से शैतान गोज़ मारता हुआ निकल जाता है। नबी करीम ﷺ ने यह भी फ़रमाया: “हर चीज़ का एक कोहान होता है, और कुरआन का कोहान सूरह अल-बक़रह है। हर चीज़ का एक मज़ होता है, और कुरआन का मज़ मुफ़स्सल सूरतें हैं।” इमाम बुस्ती रह° की सहीह में सहल बिन सअद रज़ि° से रिवायत है कि रसूलुल्लाह ﷺ ने फ़रमाया: “हर चीज़ का एक कोहान है, और कुरआन का कोहान सूरह अल-बक़रह है। अगर कोई शख्स रात के वक़्त अपने घर में इसे पढ़े तो शैतान तीन रातों तक उस घर में दाख़िल नहीं होगा, और अगर दिन के वक़्त इसे पढ़े तो शैतान तीन दिन तक उस घर में दाख़िल नहीं होगा।” इमाम बुस्ती रह° फ़रमाते हैं कि इससे मुराद सरकश शयातीन हैं।”
Ad-Darimi reported in his <i>Musnad</i> from ash-Shabi that Abdullah ibn Masud said, ‘If anyone recites ten ayahs of Surat al-Baqarah in the night, Shaytan will not enter that house that night until morning. They are: the four at the	इमाम दारिमी रह° ने अपनी <i>मुसन्नद</i> में शाबी रह° से रिवायत किया है कि हज़रत अब्दुल्लाह बिन मसऊद रज़ि° ने फ़रमाया: “जो शख्स रात के वक़्त सूरह अल-बक़रह की दस आयात पढ़े, उस रात सुबह तक शैतान उस घर में दाख़िल नहीं होगा।” यह आयात यह हैं: इस सूरत की इब्तिदाई चार आयात,

beginning of it, the Ayat al-Kursi and the two following it, and the three at the end, which begin “<i>Everything in the heavens and everything in the earth belongs to Allah</i>”. Ash-Shabi said that neither Shayṭan nor anything he dislikes will come near him or his family that day. They are not recited over a mad person without him recovering. Al-Mughirah ibn Subay‘, one of the companions of Ibn Masud, said, ‘And he will not forget the Quran.’ Ishaq ibn Isa said, ‘He will not forget what he has memorised.’	आयतुल कुर्सी और उसके बाद वाली दो आयात, और आखिरी तीन आयात जो इस फ़रमान से शुरू होती हैं: “आसमानों और ज़मीन में जो कुछ है सब अल्लाह ही का है।” शाबी रह° ने कहा कि उस दिन न शैतान और न ही कोई ऐसी चीज़ जिसे वह नापसंद करता हो, उस शख्स या उसके अहल-ए-ख़ाना के करीब आएगी। यह आयात किसी मजनून पर पढ़ी जाएँ तो वह सेहतयाब हुए बग़ैर नहीं रहता। मुगीरा बिन सुबैअ रह°, जो इब्न मसऊद रज़ि° के साथियों में से थे, ने कहा: “और वह कुरआन को नहीं भूलेगा।” इस्हाक़ बिन ईसा रह° ने कहा: “वह जो कुछ याद कर चुका है, उसे नहीं भूलेगा।”
We read in the <i>Kitab al-Istiaab</i> of Ibn ‘Abd al-Barr: ‘Labid ibn Rabbiah was one of the poets of the Jahiliyyah. He lived until the time of Islam and became a good Muslim and abandoned his poetry after entering the din. While he was caliph, ‘Umar asked him about his poetry and asked him to recite some of it. He recited Surat al-Baqarah and ‘Umar said, “I asked about your poetry.” He	हम इब्न अब्दुलबर रह° की <i>किताब अल-इस्तीआब</i> में पढ़ते हैं: “लबीद बिन रबीअह जाहिलियत के शुअरा में से एक शायर थे। वह इस्लाम के ज़माने तक ज़िंदा रहे, अच्छे मुसलमान बन गए, और दीन-ए-इस्लाम में दाख़िल होने के बाद शायरी छोड़ दी। हज़रत उमर रज़ि° के दौर-ए-ख़िलाफ़त में, उमर रज़ि° ने उनसे उनकी शायरी के बारे में पूछा और कहा कि उसमें से कुछ सुनाएँ। तो उन्होंने सूरह अल-बक़रह की तिलावत की। हज़रत उमर रज़ि° ने

said, "I have not uttered a line of poetry since Allah taught me al-Baqarah and Al Imran." 'Umar liked what he said, and gave him a stipend of 2000 and then added 500 more.' Many historians say that Labid did not utter any poetry from the time he became Muslim. Some say that after he was Muslim he only said: "Praise be to Allah, since the end of my life did not come before I had put on the trousers of Islam!"	फ़रमाया: 'मैंने तुम्हारी शायरी के बारे में पूछा था।' उन्होंने जवाब दिया: 'जब से अल्लाह तआला ने मुझे सूरह अल-बक्रह और आल-ए-इमरान सिखाई हैं, मैंने शायरी का एक शेर भी नहीं कहा।' हज़रत उमर रज़ि° को उनकी यह बात पसंद आई, चुनाँचे उन्होंने उन्हें दो हज़ार का वज़ीफ़ा दिया, फिर उसमें मज़ीद पाँच सौ का इज़ाफ़ा कर दिया। बहुत से मुअर्रिख़ीन कहते हैं कि लबीद रज़ि° ने इस्लाम क़बूल करने के बाद कोई शायरी नहीं की। बाज़ कहते हैं कि मुसलमान होने के बाद उन्होंने सिर्फ़ यह कहा: "तमाम तारीफ़ें अल्लाह के लिए हैं कि मेरी ज़िंदगी का ख़ातिमा इससे पहले नहीं हुआ कि मैंने इस्लाम की शलवार पहन ली!"
Ibn 'Abd al-Barr said that this verse was actually uttered by Qaradah ibn Nufathah as-Saluli. I believe that to be sounder. Someone else said that the verse Labid uttered in Islam was:	"इब्र अब्दुलबर ने कहा कि यह शेर दरअसल कुरादा बिन नुफ़ाथह अस-सलूली ने कहा था। मेरे नज़दीक यही बात ज़्यादा दुरुस्त है। एक और शख्स ने कहा कि लबीद ने इस्लाम क़बूल करने के बाद जो शेर कहा, वह यह था:"
No one criticizes a person as he does himself.	"कोई शख्स ख़ुद अपने आप पर जितनी तनक़ीद करता है, उतनी कोई दूसरा नहीं करता।"

A person is put right by a righteous companion.	"एक इंसान नेक साथी की वजह से दुरुस्त हो जाता है।"
Alif. Lam. Mim. [2:1]	अलिफ़। लाम। मीम। [2:1]
Interpreters disagree about the letters at the beginnings of the surahs. Amir ash-Shabi, Sufyan ath-Thawri and a group of hadith scholars say that Allah has a secret in each of His Books and these letters are Allah's secret in the Quran. They form part of the mutashabih (open to interpretation) ayahs in the Quran about which only Allah knows. It is not necessary to discuss them but one should simply believe in them and recite them as they have come. This position was related from Abu Bakr as-Siddiq and Ali ibn Abi Talib. Abu-l-Layth as-Samarqandi related that 'Umar, 'Uthman, and Ibn Masud said, 'The "separated letters" are a branch of hidden knowledge which cannot be explained.' Abu Hatim said, 'We only find the "separated letters" in the Quran at the beginning of the	सूरतों के आगाज़ में आने वाले हुरूफ़ के बारे में मुफ़स्सिरीन का इख़्तिलाफ़ है। आमिर अश-शाबी, सुफ़यान अस-सौरी और मुहदिसीन के एक गिरोह का कहना है कि अल्लाह तआला ने अपनी हर किताब में एक राज़ रखा है, और ये हुरूफ़ कुरआन में अल्लाह का राज़ हैं। ये कुरआन की मुतशाबेह आयात में से हैं जिनका हक़ीक़ी इल्म सिर्फ़ अल्लाह तआला को है। इनके बारे में बहस व गुफ़्तगू ज़रूरी नहीं, बल्कि इन पर ईमान लाना और उन्हें उसी तरह पढ़ना चाहिए जैसे वे नाज़िल हुए हैं। यह मौक़िफ़ हज़रत अबूबक्र सिद्दीक़ और हज़रत अली बिन अबी तालिब से भी मनकूल है। अबू अल-लैस अस-समरक़न्दी ने रिवायत किया है कि हज़रत उमर, हज़रत उस्मान और हज़रत अब्दुल्लाह बिन मसऊद ने फ़रमाया: "ये मुक़त्ताआत (अलग-अलग हुरूफ़) इल्म-ए-ग़ैब की एक शाख़ हैं जिनकी तफ़्सीर बयान नहीं की जा सकती।" अबू हातिम ने कहा: "हम कुरआन में इन मुक़त्ता हुरूफ़ को सिर्फ़ सूरतों के आगाज़ में पाते हैं, और हम

surahs. We do not know what Allah Almighty means by them.'	नहीं जानते कि अल्लाह तआला इनसे क्या मुराद लेता है।"
This was also stated by Abu Bakr al-Anbari, who reported from al-Hasan ibn al-Hubab from Abu Bakr ibn Abī Talib from Abu-l-Mundhir al-Wasiti from Malik ibn Mighwal from Said ibn Masruq that ar-Rabi ibn Khuthaym said, 'Allah Almighty revealed this Quran and He has kept the knowledge of whatever He wishes for Himself and He has acquainted you with what He wishes. As for what He has kept to Himself, you will not acquire it, so do not ask about it. As for what He has acquainted you with, it is that which you can ask and report about. You do not know the entire Quran and you will not teach all that you know.' Abu Bakr said, 'This tells us that He concealed the meanings of the letters of the Qur'an from everyone as a test from Allah Almighty. Anyone who believes in them is	यही बात अबू बक्र अल-अनबारी ने भी बयान की है। उन्होंने हसन बिन अल-हुबाब से, उन्होंने अबू बक्र बिन अबी तालिब से, उन्होंने अबू अल-मुन्धिर अल-वासिती से, उन्होंने मालिक बिन मिग़वल से, उन्होंने सईद बिन मसरूक़ से रिवायत किया कि रबीअ बिन ख़ुसैम ने फ़रमाया: "अल्लाह तआला ने यह कुरआन नाज़िल फ़रमाया है, और इसमें से जिस चीज़ का इल्म चाहा अपने लिए मख़सूस रखा है, और जिस चीज़ का चाहा तुम्हें उससे आगाह कर दिया है। पस जो इल्म उसने अपने लिए मख़सूस रखा है, तुम उसे हासिल नहीं कर सकते, लिहाज़ा उसके बारे में सवाल न करो। और जिस चीज़ से उसने तुम्हें आगाह किया है, वही है जिसके बारे में तुम सवाल कर सकते हो और बयान कर सकते हो। तुम पूरे कुरआन का इल्म नहीं रखते, और न ही तुम अपने तमाम इल्म को दूसरों तक पहुँचा सकोगे।" अबू बक्र ने कहा: "इससे मालूम होता है कि अल्लाह तआला ने कुरआन के इन हुरूफ़ के मआनी तमाम लोगों से मख़फ़ी रखे हैं, और यह

rewarded and is fortunate. Anyone who rejects and doubts them sins and is far from Allah's mercy.' 'Abdullah ibn Mas'ūd said, 'A believer does not have any belief in anything better than belief in the Unseen.' Then he recited, 'those who believe in the Unseen.'	अल्लाह तआला की तरफ़ से एक आजमाइश है। जो शख्स इन पर ईमान लाता है, वह अज़्र पाता है और कामयाब व खुशनसीब होता है। और जो उन्हें रद्द करता है या उनमें शक करता है, वह गुनाहगार होता है और अल्लाह की रहमत से दूर हो जाता है।" हज़रत अब्दुल्लाह बिन मसऊद ने फ़रमाया: "किसी मोमिन के लिए ग़ैब पर ईमान से बेहतर कोई ईमान नहीं है।" फिर उन्होंने यह आयत तिलावत की: "जो ग़ैब पर ईमान रखते हैं।"
This is the basic position and ruling about the mutashabih. It is sound according to the evidence, which will be presented when the matter is again addressed at the beginning of Al 'Imran, Allah willing. The position of a large group of scholars, however, is that we should speak about this matter and search out the benefits it contains and the ideas that can be deduced from it. People disagree about the letters and say many different things. It is related from Ibn 'Abbas and 'Ali that the	मुतशाबेह आयात के बारे में यही बुनियादी मौक़िफ़ और हुक्म है। दलाइल की रौ से यही राय दुरुस्त मालूम होती है, जिन्हें इंशाअल्लाह सूरह आल-ए-इमरान के आगाज़ में इस मौजू पर दोबारा गुफ़्तगू के वक़्त बयान किया जाएगा। ताहम उलमा के एक बड़े गिरोह का मौक़िफ़ यह है कि इस मसअले पर गुफ़्तगू की जानी चाहिए, और उन फ़वाइद व मआनी की तलाश करनी चाहिए जो इन हुरूफ़ में पोशीदा हैं और जिनसे मुख़लिफ़ नुक्रात अख़ज़ किए जा सकते हैं। लोग इन हुरूफ़-ए-मुक़त्ताआत के बारे में मुख़लिफ़ आराअ रखते हैं और इनके मुतअल्लिफ़ बहुत-सी बातें बयान की गई हैं।

‘separated letters’ in the Qur’an are the greatest Name of Allah, though we do not know how it is composed from them.	हज़रत इब्न अब्बास और हज़रत अली से मनकूल है कि कुरआन में आने वाले हुरूफ़-ए-मुक़त्ताअत अल्लाह तआला के इस्म-ए-आज़म का हिस्सा हैं, अगरचे हमें यह मालूम नहीं कि वह इन हुरूफ़ से किस तरह मुरक्कब बनता है।
Qutrub, al-Farra’ and others say that it is simply a question of the letters of the alphabet — and Allah knows best — so that when the Arabs were challenged by the Quran to produce something like it, it would be clear that it is composed of the same letters which are the basis of their normal language. That would make their inability to duplicate it all the more apparent in the proof against them since there is nothing in it outside of the letters they use in their everyday speech. Qutrub said, ‘They used to run away when they heard the Quran. When they heard, “Alif Lam Mīm” and “Alif Lam Mim Ṣād”, they did not know this expression and so they stopped	कुतरुब, फ़र्रा और दीगर उलमा का कहना है कि ये दरअसल सिर्फ़ हुरूफ़-ए-तहज्जी हैं — और अल्लाह ही बेहतर जानता है — ताकि जब अरबों को कुरआन की मानिंद कोई कलाम पेश करने का चैलेंज दिया गया, तो उन पर वाज़ेह हो जाए कि कुरआन उन्हीं हुरूफ़ से मुरक्कब है जो उनकी आम ज़बान की बुनियाद हैं। इस तरह उनका कुरआन जैसी चीज़ पेश करने से आजिज़ रह जाना उनके खिलाफ़ दलील को और ज़्यादा वाज़ेह कर देता है, क्योंकि कुरआन में कोई ऐसा हरफ़ या उन्सुर नहीं जो उनकी रोज़मर्रा गुफ़्तगू में इस्तेमाल होने वाले हुरूफ़ से बाहर हो। कुतरुब ने कहा: "अरब जब कुरआन सुनते थे तो उससे भाग जाते थे। लेकिन जब उन्होंने 'अलिफ़ लाम मीम' और 'अलिफ़ लाम मीम साद' सुना तो वे इस तर्ज़-ए-कलाम से वाकिफ़ न थे, इसलिए रुक गए और

to listen to him ﷺ and he then presented the familiar Quran to them so that it would be firm in their hearing and ears and would be evidence against them.’ Some people say as corroboration for this, ‘It is related that, when the idolaters refused to listen to the Quran in Makkah and said, “Do not listen to this Quran. Drown it out”, these letters were revealed so that they would find it odd and start to listen. So they began listening to the Quran and the evidence against them was clearly established.’	सुनने लगे। फिर नबी ﷺ ने उनके सामने वही मशहूर कुरआन पेश किया, ताकि वह उनके कानों और समाअत में अच्छी तरह रासिख हो जाए और उनके खिलाफ़ हुज्जत कायम हो जाए।" बाज़ लोगों ने इस राय की ताईद में यह बात भी बयान की है: "रिवायत है कि जब मक्का में मुशरिकीन ने कुरआन सुनने से इंकार कर दिया और कहा: 'इस कुरआन को मत सुनो और इसके पढ़ने के वक़्त शोर मचाओ', तो ये हुरूफ़ नाज़िल किए गए ताकि वे उन्हें ग़ैर-मामूली और अजीब समझें और सुनने पर मजबूर हो जाएँ। चुनाँचे वे सुनने लगे, और यूँ उन पर हुज्जत पूरी तरह कायम हो गई।"
Another group said that they are letters which indicate the names of things from which they are taken. Ibn Abbas and others said that Alif is from Allah, Lam from Jibril and Mim from Muhammad ﷺ. It is said that alif is the beginning of the Divine Name Allah, lam is the beginning of the Divine Name Latif, and mim is the beginning of the Divine Name Majid. Abu-d-Duha related	एक दूसरे गिरोह का कहना है कि ये ऐसे हुरूफ़ हैं जो उन नामों की तरफ़ इशारा करते हैं जिनसे उन्हें लिया गया है। हज़रत इब्न अब्बास और दीगर उलमा ने कहा है कि अलिफ़ से मुराद अल्लाह है, लाम से मुराद जिब्रील हैं, और मीम से मुराद मुहम्मद ﷺ हैं। यह भी कहा गया है कि अलिफ़ अल्लाह तआला के इस्म-ए-मुबारक "अल्लाह" का इब्तिदाई हरफ़ है, लाम अल्लाह तआला के इस्म "लतीफ़" का इब्तिदाई हरफ़ है, और मीम अल्लाह तआला के

from Ibn Abbas that Alif Lam Mīm' means: 'I, Allah, know best.' 'Alif Lam Ra' means: 'I, Allah, see.' and 'Alif Lam Mim Sad' means: 'I, Allah, bestow.' So the alif indicates the idea 'I', lam indicates the name Allah, and mim indicates the meaning 'I know.' Az-Zajjaj preferred this position and said, 'I believe that each letter has a meaning.' The Arabs have spoken by these letters in verse and used them instead of words.	इस्म "मजीद" का इब्तिदाई हरफ़ है। अबू अद-दुहा ने हज़रत इब्न अब्बास से रिवायत किया है कि: "अलिफ़ लाम मीम" का मतलब है: "मैं, अल्लाह, सबसे बेहतर जानता हूँ।" "अलिफ़ लाम रा" का मतलब है: "मैं, अल्लाह, देखता हूँ।" "अलिफ़ लाम मीम साद" का मतलब है: "मैं, अल्लाह, अता करता हूँ।" इस तफ़्सीर के मुताबिक़ अलिफ़ "मैं" (अना) के मफ़हूम की तरफ़ इशारा करता है, लाम इस्म-ए-अल्लाह की तरफ़ इशारा करता है, और मीम "मैं जानता हूँ" के मअनी की तरफ़ इशारा करता है। इमाम ज़ज्जाज ने इस राय को तरजीह दी और फ़रमाया: "मेरा अकीदा है कि हर हरफ़ का एक मअनी है।" अरब अपने अशआर में भी इन हुरूफ़ के ज़रिए कलाम करते थे और बाज़ औकात पूरे अल्फ़ाज़ के बजाय इन्हीं हुरूफ़ को इस्तेमाल करते थे।
Zayd ibn Aslam said, 'They are the names of the surahs.' Al-Kalbi said, 'They are oaths which Allah Almighty swore by due to their excellence and honour. They are an aspect of His Names.' Ibn Abbas also said that. Some scholars refute this position saying that it is	ज़ैद बिन असलम ने कहा: "ये सूरतों के नाम हैं।" कलबी ने कहा: "ये क़समें हैं जिनकी अल्लाह तआला ने उनकी फ़ज़ीलत और शरफ़ की बुनियाद पर क़सम खाई है, और ये उसके अस्मा के बाज़ पहलुओं में से हैं।" हज़रत इब्न अब्बास से भी यही क़ौल मनकूल है। बाज़ उलमा ने इस राय की तरदीद

not valid for them to be oaths because an oath is always connected to a particle, such as inna, qad, laqad or ma. None of these is used here and so it is not correct to say that they are oaths. The reply to that is that the object of the oath is His words: 'without any doubt.' If a man were to swear, saying, 'By Allah, there is no doubt in this Book,' then the words would be correct. 'La' [no] is the complement of the oath. So the position of al-Kalbi and what is reported from Ibn 'Abbas is confirmed as being both correct and valid.	करते हुए कहा है कि यह दुरुस्त नहीं कि इन हुरूफ़ को क़सम क़रार दिया जाए, क्योंकि क़सम हमेशा किसी हरफ़-ए-क़सम के साथ आती है, जैसे "इन्ना", "क़द", "लक़द" या "मा" वगैरह। यहाँ इनमें से कोई भी हरफ़ मौजूद नहीं, इसलिए यह कहना दुरुस्त नहीं कि ये क़समें हैं। इसका जवाब यह दिया गया है कि क़सम का जवाब (मक़सूद-ए-क़सम) अल्लाह तआला का यह फ़रमान है: "इस किताब में कोई शक नहीं।" चुनाँचे अगर कोई शख्स यूँ क़सम खाए: "अल्लाह की क़सम! इस किताब में कोई शक नहीं।" तो यह कलाम दुरुस्त और बामअनी होगा। इस तफ़्सीर के मुताबिक़ "ला" (नहीं) क़सम के जवाब का तकमिला है। लिहाज़ा कलबी का मौक़िफ़ और हज़रत इब्न अब्बास से मनकूल क़ौल, दोनों सहीह और मोतबर क़रार पाते हैं।
If it is asked what is the wisdom in an oath from Allah Almighty, when people in that time were in two groups — those who accepted and those who denied — since those who accept do so without an oath and those who deny will not believe even with an oath, the	अगर यह सवाल किया जाए कि अल्लाह तआला की क़सम खाने में क्या हिकमत है, जबकि उस ज़माने के लोग दो गिरोहों में तक़सीम थे: एक वे जो ईमान लाने वाले थे और दूसरे वे जो इंकार करने वाले थे। ईमान लाने वाले तो बग़ैर क़सम के भी मान लेते हैं, और इंकार करने वाले क़सम के बावजूद भी ईमान

answer is that the Quran was revealed in the language of the Arabs and when one of the Arabs wanted to stress his words, he would swear to what he said. Allah Almighty wanted to stress the proof to them and so He swore that the Quran was from Him.	नहीं लाते, तो फिर क़सम खाने की क्या ज़रूरत थी? इसका जवाब यह है कि कुरआन अरबों की ज़बान में नाज़िल हुआ था, और अरबों में यह तरीक़ा राइज था कि जब कोई शख्स अपनी बात पर ज़्यादा ज़ोर देना चाहता तो क़सम खाता था। लिहाज़ा अल्लाह तआला ने भी उन पर हुज्जत को ज़्यादा मुअक्कद और मज़बूत करने के लिए क़सम खाई, ताकि यह वाज़ेह हो जाए कि कुरआन उसी की तरफ़ से नाज़िल किया गया है।
Some say that ‘Alif Lam Mim’ means: ‘This Book was revealed to you from the Preserved Tablet.’ Qatadah said, ‘Alif Lam Mim is one of the Names of the Quran.’ It is related that Muhammad ibn ‘Alī at-Tirmidhi said, ‘Allah Almighty summed up all the rulings and stories which are in that surah in the letters which are mentioned at the beginning of it. That can only be understood by a Prophet or a wali. Then He made that clear throughout the entire surah so that all people would	बाज़ उलमा का कहना है कि "अलिफ़ लाम मीम" का मतलब यह है: "यह किताब तुम्हारी तरफ़ लौह-ए-महफूज़ से नाज़िल की गई है।" क़तादा ने फ़रमाया: "अलिफ़ लाम मीम कुरआन-ए-मजीद के नामों में से एक नाम है।" रिवायत है कि मुहम्मद बिन अली अत-तिर्मिज़ी ने कहा: "अल्लाह तआला ने इस सूरात में मौजूद तमाम अहकाम और वाकिआत को उन हुरूफ़ में समो दिया है जो उसके आगाज़ में ज़िक्र किए गए हैं। इस हक़ीक़त को सिर्फ़ कोई नबी या अल्लाह का कोई वली ही समझ सकता है। फिर अल्लाह तआला ने पूरी सूरात में उन मआनी को तफ़्सील से वाज़ेह कर दिया ताकि तमाम लोग उन्हें

understand it.' Other things are said as well, and Allah knows best.	समझ सकें।" इस मौजू के बारे में दीगर अक़वाल भी मनकूल हैं, और हक़ीक़त को सबसे बेहतर अल्लाह तआला ही जानता है।
The stop on these letters is with a sukun since they are incomplete, except when they are reported about or connected. Then they are inflected. There is disagreement about their position in respect of inflection.	इन हुरूफ़ पर वक्फ़ (रुकना) सुकून के साथ किया जाता है, क्योंकि ये अपने तौर पर मुकम्मल अल्फ़ाज़ नहीं हैं। अलबत्ता जब इनके बारे में ख़बर दी जाए या इन्हें किसी दूसरे लफ़्ज़ के साथ मिला कर इस्तेमाल किया जाए, तो इन पर एराब जारी होते हैं (यानी इनकी हालत-ए-रफ़अ, नस्ब या जर ज़ाहिर की जाती है)। एराब के एतिबार से इन हुरूफ़ की नहवी हैसियत के बारे में उलमा के दरमियान इख़िलाफ़ पाया जाता है।
That is the Book, without any doubt. In it is guidance for the god-fearing. [2:2]	यह वह किताब है, जिसमें कोई शक नहीं। इसमें मुत्तक़ियों के लिए हिदायत है। [2:2]
That is the Book	यही वह किताब है
It is said that 'That is the Book' really means 'This is the Book'. The word 'that' (dhalika) is used here to indicate what is present, even if its normal usage is to indicate something absent, just as Allah says about Himself: 'That	कहा गया है कि "ज़ालिकल किताबु" (वह किताब) का मतलब दरअसल "यह किताब" है। यहाँ "ज़ालिका" (वह) का लफ़्ज़ मौजूद चीज़ की तरफ़ इशारा करने के लिए इस्तेमाल हुआ है, अगरचे आम तौर पर इसका इस्तेमाल ग़ायब या दूर की चीज़ के लिए होता है। इसी तरह

(dhalika) is the Knower of the Unseen and the Visible, the Almighty, the Most Merciful.’ So the word ‘that’ indicates the Quran. In short the meaning is: ‘Alif Lam Mīm. This Book is without any doubt.’ That is the position of Abu ‘Ubaydah, ‘Ikrimah and others. We find support for it in the words of the Almighty: ‘That (tilka) is the argument We gave to Ibrahim.’ and ‘Those (tilka) are Allah’s Signs which we recite to you with truth.’. But when they become as if they were distant, the word ‘that’ is used. In al-Bukhari we find, Mamar said, “‘That Book’ is the Qur’an.’ It is ‘guidance for the godfearing’ in its clarification and evidence, just as He says: ‘That is Allah’s judgment. Allah will judge between you.’ This is Allah’s judgment. ‘This’ can mean ‘that’.	अल्लाह तआला अपने बारे में फ़रमाता है: "वही ग़ैब और हाज़िर का जानने वाला, ज़बरदस्त, निहायत रहम करने वाला है।" पस यहाँ "ज़ालिका" का इशारा कुरआन-ए-मजीद की तरफ़ है। खुलासा-ए-मअनी यह है: "अलिफ़ लाम मीम। यह किताब है, जिसमें कोई शक नहीं।" यही मौक़िफ़ अबू उबैदा, इकरिमा और दीगर उलमा का है। इसकी ताईद अल्लाह तआला के इन इरशादात से भी होती है: "यह वह दलील थी जो हमने इब्राहीम को अता की। "और "यह अल्लाह की आयात हैं जिन्हें हम हक़ के साथ तुम पर तिलावत करते हैं।" अगरचे ये चीज़ें मौजूद और मालूम होती हैं, लेकिन जब उनकी अज़मत और रिफ़अत-ए-शान को बयान करना मक़सूद हो तो उनके लिए "वह" का सीगा इस्तेमाल किया जाता है, गोया वे बुलंद मरतबा होने की वजह से दूर नज़र आती हैं। सहीह बुखारी में मअमरॆ का क़ौल मनकूल है: "ज़ालिकल किताबु" से मुराद कुरआन-ए-मजीद है। और "हुदन लिल-मुत्तक़ीन" (मुत्तक़ियों के लिए हिदायत) का मतलब यह है कि कुरआन अपनी वज़ाहत और दलाइल के ज़रिए मुत्तक़ियों के लिए हिदायत है। जैसे अल्लाह तआला फ़रमाता है: "यह
--	--

	अल्लाह का फ़ैसला है, वह तुम्हारे दरमियान फ़ैसला करेगा।" यानी "यह" अल्लाह का फ़ैसला है। इससे मालूम होता है कि अरबी ज़बान में बाज़ औकात "यह" के मआनी "वह" और "वह" के मआनी "यह" के तौर पर भी इस्तेमाल हो जाते हैं।
There are a number of different things said about the meaning of these words. It is said that 'That is the Book' refers to the Book which accompanies all human beings, containing the information about whether they will be happy or wretched in the Next World, their lifespan and their provision, and the whole phrase means that there is no way of altering it. It is said that 'That is the Book' means: 'That which I wrote for Myself before time: "My mercy precedes My anger."' In Sahih Muslim, Abu Hurayrah reported that the Messenger of Allah ﷺ said, 'When Allah finished creating creation, He wrote in His Book which is with Him, "My mercy predominates over (or	इन अल्फ़ाज़ के मआनी के बारे में मुतअद्दिद अक़वाल बयान किए गए हैं। एक क़ौल यह है कि "ज़ालिकल किताबु" से मुराद वह किताब है जो हर इंसान के साथ मुतअल्लिक़ है, जिसमें यह दर्ज है कि आख़िरत में वह सआदतमंद होगा या बदबख़्त, उसकी उम्र कितनी होगी, उसका रिज़क़ कितना होगा, और उसकी तमाम तक़दीरी तफ़्सीलात क्या होंगी। इस तफ़्सीर के मुताबिक़ पूरे जुमले का मतलब यह है कि इसमें किसी क्रिस्म की तब्दीली या रद्दोबदल का कोई इमकान नहीं। यह भी कहा गया है कि "ज़ालिकल किताबु" से मुराद अल्लाह तआला का वह नौश्ता है जो उसने अज़ल में अपने लिए लिखा था: "मेरी रहमत मेरे ग़ज़ब पर सबक़त ले गई है।" सहीह मुस्लिम में हज़रत अबू हु़रैरहँ से रिवायत है कि रसूलुल्लाह ﷺ ने फ़रमाया: "जब अल्लाह तआला

precedes) My anger.””	मख्लूक की तखलीक़ से फ़ारिग़ हुआ तो उसने अपनी उस किताब में, जो उसके पास है, लिख दिया: 'बेशक मेरी रहमत मेरे ग़ज़ब पर ग़ालिब है' (या 'मेरे ग़ज़ब से पहले है')।
It is said that Allah Almighty promised His Prophet ﷺ that He would send down on him a Book which water would not erase. It indicates the promise which is referred to in Sahih Muslim in the hadith of ‘Iyad ibn Himar al-Majasha‘i that the Messenger of Allah ﷺ said, ‘Allah looked at the people of the earth and hated men, both Arabs and non-Arabs, except for the remainder of the People of the Book. He said to His Prophet ﷺ, “I sent you to test you and to test others by you. I sent down to you a Book which cannot be washed away by water. You recite it asleep and awake.””	यह भी कहा गया है कि अल्लाह तआला ने अपने नबी ﷺ से यह वादा फ़रमाया था कि वह आप पर ऐसी किताब नाज़िल करेगा जिसे पानी मिटा नहीं सकेगा। यह उस वादे की तरफ़ इशारा है जिसका ज़िक्र सहीह मुस्लिम में हज़रत इयाज़ बिन हिमार अल-मुजाशिर्ई की रिवायत की हुई हदीस में आया है कि रसूलुल्लाह ﷺ ने फ़रमाया: "अल्लाह तआला ने ज़मीन वालों की तरफ़ नज़र फ़रमाई तो अरब व अज़म सब लोगों को नापसंद फ़रमाया, सिवाय अहल-ए-किताब के उन चंद लोगों के जो (दीन-ए-हक़ पर) बाक़ी रह गए थे। फिर अल्लाह तआला ने अपने नबी ﷺ से फ़रमाया: 'मैंने तुम्हें इस लिए भेजा है कि तुम्हें आज़माऊँ और तुम्हारे ज़रिए दूसरों को आज़माऊँ। और मैंने तुम पर ऐसी किताब नाज़िल की है जिसे पानी धोकर मिटा नहीं सकता। तुम उसे नींद की हालत में भी पढ़ते हो और बेदारी में भी।'"
It is said that this phrase	यह भी कहा गया है कि यह इबारत

indicates the part of the Quran which was promised in Makkah. It is said that when Allah Almighty revealed to His Prophet ﷺ: 'We will impose a weighty Word upon you', the Messenger of Allah ﷺ continued to wait for this promise to be fulfilled by his Lord. When 'Alif Lam Mīm. That is the Book, without any doubt' was revealed to him in Madinah, it had the meaning: 'This Quran which was revealed to you in Madinah is that Book which you were promised and which I revealed to you in Makkah.'	कुरआन के उस हिस्से की तरफ़ इशारा करती है जिसका वादा मक्का में किया गया था। कहा जाता है कि जब अल्लाह तआला ने अपने नबी ﷺ पर यह आयत नाज़िल फ़रमाई: "अनक़रीब हम आप पर एक निहायत भारी कलाम नाज़िल करेंगे।" तो रसूलुल्लाह ﷺ अपने रब के इस वादे के पूरा होने के मुंतज़िर रहे। फिर जब मदीना में यह आयात नाज़िल हुई: "अलिफ़ लाम मीम। यह वह किताब है, जिसमें कोई शक नहीं।" तो उनका मफ़हूम यह था: "यह वही कुरआन है जो मदीना में आप पर नाज़िल किया गया है, और यही वह किताब है जिसका आप से वादा किया गया था और जिसकी बशारत मैंने मक्का में आपको दी थी।"
It is said that the word 'That' indicates what was revealed in the Torah and Gospel concerning the Quran. The implication is that it is that Book which was foretold by the Torah and Gospel. The Gospel and Torah testify to its soundness and it deals with what is in them as well as containing things which are not in them. It is said that 'That is	यह भी कहा गया है कि यह इबारत कुरआन के उस हिस्से की तरफ़ इशारा करती है जिसका वादा मक्का में किया गया था। कहा जाता है कि जब अल्लाह तआला ने अपने नबी ﷺ पर यह आयत नाज़िल फ़रमाई: "अनक़रीब हम आप पर एक निहायत भारी कलाम नाज़िल करेंगे।" तो रसूलुल्लाह ﷺ अपने रब के इस वादे के पूरा होने के मुंतज़िर रहे। फिर जब मदीना में यह आयात नाज़िल हुई: "अलिफ़ लाम मीम। यह वह

the Book' is a reference to the Torah and Gospel themselves, so that the meaning is 'Alif Lam Mim. Those two Books' or the like of those two Books, meaning that this Qur'an contains what is in those two Books. So the word 'that' indicates 'two', the possibility of which is attested to in the Quran when Allah Almighty says: 'A cow, not old or virgin, but somewhere between the two (dhalika)', making it clear that the word 'that' can refer to two things.	किताब है, जिसमें कोई शक नहीं।" तो उनका मफ़हूम यह था: "यह वही कुरआन है जो मदीना में आप पर नाज़िल किया गया है, और यही वह किताब है जिसका आप से वादा किया गया था और जिसकी बशारत मैंने मक्का में आपको दी थी।"
It is said that 'That is the Book' refers to the Preserved Tablet — that Book in which the destinies of all existent things are recorded. Al-Kisa'i said that it refers to the Quran in heaven which had not yet been revealed. It is said that Allah Almighty promised the People of the Book that He would send down a Book to Muhammad ﷺ and so it indicates that promise. Al-Mubarrad said that the meaning is that this Quran is	यह भी कहा गया है कि "ज़ालिकल किताबु" से मुराद लौह-ए-महफूज़ है, यानी वह किताब जिसमें तमाम मौजूदात की तक्रदीरें और उनके अहवाल लिखे हुए हैं। इमाम किसाई ने कहा है कि इससे मुराद वह कुरआन है जो आसमान में मौजूद था और अभी नाज़िल नहीं किया गया था। यह भी कहा गया है कि अल्लाह तआला ने अहल-ए-किताब से वादा किया था कि वह हज़रत मुहम्मद ﷺ पर एक किताब नाज़िल करेगा, लिहाज़ा यह इबारत उसी वादे की तरफ़ इशारा करती है।

that Book by which you seek victory against the unbelievers.	इमाम अल-मुबर्दॆ ने कहा: "इसका मअनी यह है कि यह कुरआन वही किताब है जिसके ज़रिए तुम कुफ़्फ़ार के मुक़ाबले में फ़तह और ग़लबा तलब किया करते थे।"
It is also said that it means all the letters of the alphabet, out of which all books are composed. This is somewhat borne out by the derivation of the word kitab (book) which is a verbal noun from kataba, yaktubu. From it comes katibah (squadron), so called because it is composed of horsemen gathered together and takattaba is used when horses are deployed in squadrons. Kutbah is a seam, and the plural is kutab. So kitab is the writing by the scribe of the letters of the alphabet joined together in words. It is called a Book, even if it is just writing. The word kitab also denotes obligation, judgment, prescription and the decree.	यह भी कहा गया है कि "अल-किताब" से मुराद हुरूफ़-ए-तहज़्ज़ी के तमाम हुरूफ़ हैं, जिनसे तमाम किताबें तश्कील पाती हैं। इस बात की किसी हद तक ताईद लफ़्ज़ "किताब" की लुग़वी अस्ल से भी होती है, क्योंकि "किताब" फ़ेअल "कतबा, यक्तुबु" (लिखना) से बना हुआ मसदर है। इसी माद्दे से "कतीबह" (फ़ौजी दस्ता या लश्कर) का लफ़्ज़ भी बना है, जिसे यह नाम इसलिए दिया गया कि वह सवारों के एक मजमूए पर मुश्तमिल होता है जो इकट्ठे किए गए हों। इसी तरह "तक़त्तबतिल ख़ैलु" उस वक़्त कहा जाता है जब घोड़ों को मुख़्तलिफ़ दस्तों की शक़्ल में तरतीब दिया जाए। "कुत्बह" का मअनी सीवन या जोड़ भी है, और इसकी जमअ "कुतब" आती है। लिहाज़ा "किताब" से मुराद कातिब (लिखने वाले) का हुरूफ़-ए-तहज़्ज़ी को आपस में जोड़कर अल्फ़ाज़ की सूरत में लिखना है। किसी तहरीर को "किताब" कहा जाता है, ख़्वाह वह सिर्फ़ लिखी

	हुई इबारत ही क्यों न हो। लफ़्ज़ "किताब" के दीगर मआनी भी हैं, जैसे: फ़र्ज या वुजूब; हुक्म; क़ानून या मुकर्ररा ज़ाबिता; फ़ैसला; तक़दीर या इलाही फ़रमान।
without any doubt.	इसमें कोई शक नहीं।
The word 'doubt' (rayb) has three meanings. One is doubt, the second is suspicion, and the third is need. So there is no doubt and no suspicion about the Book of Allah Almighty. It means that it is true in itself and it is revealed from Allah and is one of His qualities, uncreated and not within time, even if the unbelievers doubt that. It is said that the phrase is a prohibition, meaning 'Do not doubt.' The words end as if He were saying, 'That Book is true.' The verb raba is used when you have doubt and fear about something. Araba means to become full of doubt.	"रैब" (शक) के लफ़्ज़ के तीन मआनी बयान किए गए हैं: शक; बदगुमानी या शुब्हा; हाजत या ज़रूरत । लिहाज़ा अल्लाह तआला की किताब के बारे में न कोई शक है और न कोई शुब्हा। इसका मतलब यह है कि यह किताब अपनी ज़ात में हक़ और सच्ची है, अल्लाह तआला की तरफ़ से नाज़िल की गई है, और उसकी सिफ़ात में से एक सिफ़त है। यह मख़लूक नहीं और न ही ज़माने के दायरे में दाख़िल है, अगरचे कुफ़्रार इसके बारे में शक करते हों। यह भी कहा गया है कि यह जुमला दरअसल नहीं (मुमानअत) के मआनी में है, यानी: "इसमें शक न करो।" गोया कलाम का इख़िताम इस मफ़हूम पर होता है: "यह किताब बरहक़ है।" अरबी में "राबा" उस वक़्त बोला जाता है जब किसी चीज़ के बारे में शक और ख़ौफ़ पैदा हो। और "अराबा" का मअनी है: "शदीद शक में मुबतला

	हो जाना" या "शक से भर जाना"।
In it is guidance	इसमें हिदायत है।
The word <i>huda</i> (guidance) in Arabic means right guidance and clarification, in other words it involves unveiling, guidance and increased clarification for the people who follow it.	अरबी ज़बान में "हुदन" (हिदायत) का मअनी दुरुस्त रहनुमाई और वाज़ेह बयान है। दूसरे अल्फ़ाज़ में, इसमें हक्काइक़ को आशकार करना, रास्ता दिखाना, और उसकी पैरवी करने वालों के लिए मज़ीद वज़ाहत और बसीरत फ़राहम करना शामिल है। यानी हिदायत सिर्फ़ रास्ता बताने का नाम नहीं, बल्कि हक़ को वाज़ेह करके इंसान को उस तक पहुँचाने और उस पर साबित-क़दम रखने का भी नाम है।
There are two types of guidance. Guidance can mean pointing out the way and this is what the Messengers and their followers are able to do. Allah says: 'Every people has a guide.' He says: 'You are guiding to a straight path.' So he ﷺ has given us that aspect of guidance which entails direction, calling to the truth and admonition. The aspect of guidance, however, which involves people actually following the path and reaching the goal is the business of	हिदायत की दो किस्में हैं। एक किस्म की हिदायत रास्ता दिखाने और उसकी निशानदेही करने के मअनी में होती है, और यह वह हिदायत है जिसे अंबिया अलैहिमुस्सलाम और उनके पैरोकार अंजाम दे सकते हैं। अल्लाह तआला फ़रमाता है: "हर क्रौम के लिए एक हादी (राह दिखाने वाला) है।" और फ़रमाता है: "बेशक आप सीधे रास्ते की तरफ़ रहनुमाई करते हैं।" चुनाँचे नबी ﷺ ने हमें हिदायत का वह पहलू अता फ़रमाया जो रहनुमाई, हक़ की दावत और नसीहत पर मुश्तमिल है। लेकिन हिदायत की दूसरी किस्म, जिसमें इंसान

Allah alone. He says to his Prophet ﷺ: ‘You cannot guide those you would like to.’ Guidance here means filling the heart with faith. Further examples of this are when Allah says: ‘They are the people guided by their Lord’ and ‘He guides whoever He wills’ where guidance means being actually moved to and on the path of guidance.	वाक़ई उस रास्ते को इख़्तियार कर ले और मंज़िल तक पहुँच जाए, सिर्फ़ अल्लाह तआला के इख़्तियार में है। इसी लिए अल्लाह तआला ने अपने नबी ﷺ से फ़रमाया: "आप जिसे चाहें हिदायत नहीं दे सकते।" यहाँ हिदायत से मुराद दिल में ईमान पैदा करना है। इसी मफ़हूम की मज़ीद मिसालें अल्लाह तआला के इन इरशादात में मिलती हैं: "यही वे लोग हैं जो अपने रब की तरफ़ से हिदायत पर हैं।" और "वह जिसे चाहता है हिदायत देता है।" इन आयात में हिदायत का मअनी यह है कि अल्लाह तआला बंदे को हक़ीक़तन हिदायत के रास्ते पर चला दे और उस पर क़ायम रखे।
Abu'l-Maali said, ‘Guidance means “bringing to” and it entails guiding the believers to the paths of the Garden and the roads which lead to it, as in the words of Allah describing those who do jihad: “He will not let their actions go astray. He will guide them.. or in the case of the unbelievers to the Fire, as in His words: “Guide them to the Path of the Blazing Fire”. It is said that ‘hudā’ is	अबू अल-मआली ने कहा: "हिदायत" का मअनी "पहुँचा देना" है। इस मफ़हूम के मुताबिक़ हिदायत का मतलब यह है कि अल्लाह तआला मोमिनों को जन्नत के रास्तों और उन राहों तक पहुँचा देता है जो जन्नत की तरफ़ ले जाती हैं, जैसा कि अल्लाह तआला मुजाहिदीन के बारे में फ़रमाता है: "वह उनके आमाल को हरगिज़ ज़ाया नहीं करेगा। वह उन्हें हिदायत देगा..." इसी तरह काफ़िरों के बारे में भी हिदायत का लफ़्ज़ आया है, लेकिन वहाँ

one of the names for a river because people are guided in it to their livelihood and all their hopes.	इससे मुराद उन्हें जहन्नम की तरफ़ ले जाना है, जैसा कि अल्लाह तआला फ़रमाता है: "उन्हें भड़कती हुई आग के रास्ते की तरफ़ ले जाओ।" यह भी कहा गया है कि "हुदन" एक दरिया के नामों में से भी है, क्योंकि लोग उसके ज़रिए अपनी रोज़ी, मआश और अपनी मुख्तलिफ़ उम्मीदों तक पहुँचते हैं और उनकी रहनुमाई होती है।
for the god-fearing:	मुत्तक़ीयों के लिए
Allah Almighty singled out the godfearing for His guidance, even though the Qur'an is, in fact, guidance for all creatures, in order to honour them because they believe and affirm what it contains. It is related that Abu Rawq said, "Guidance for the godfearing" means honour for them. It is ascribed to them out of esteem and honour for them and to show their excellence.'	अल्लाह तआला ने अपनी हिदायत के लिए ख़ास तौर पर मुत्तक़ीन का ज़िक्र किया है, हालाँकि हक़ीक़त में कुरआन तमाम मख़्लूक के लिए हिदायत है। मुत्तक़ीन को ख़ास तौर पर इसलिए ज़िक्र किया गया ताकि उनकी इज़्ज़त व तकरीम ज़ाहिर हो, क्योंकि वे कुरआन की बातों पर ईमान लाते हैं और उसमें मौजूद हक़ाइक़ की तस्दीक़ करते हैं। रिवायत है कि अबू रौक़ ने कहा: "मुत्तक़ीन के लिए हिदायत' का मतलब यह है कि यह उनके लिए इज़्ज़त व शरफ़ है।" हिदायत को उनकी तरफ़ मंसूब करना दरअसल उनकी क़द्र व मंज़िलत को ज़ाहिर करने, उनकी तकरीम करने, और उनकी फ़ज़ीलत को नुमायाँ करने के लिए है।

The word 'god-fearing (muttaqin) is derived from taqwa whose linguistic root is said to mean to be sparing of words. Ibn Faris related that. That is indicated by the hadith, 'The godly (taqi) is sparing in his words and the godfearing (muttaqi) is above both the believers and those who are obedient.' He is someone who protects himself, by his righteous actions and sincere supplication, from Allah's punishment. It is derived from guarding yourself against the disliked by putting a barrier between you and it.	"मुत्तक़ी" का लफ़्ज़ "तक्वा" से माखूज़ है। अहल-ए-लुगत के नज़दीक इसकी अस्ल का एक मअनी कम बोलना और गुफ़्तगू में एहतियात करना भी बयान किया गया है। इब्न फ़ारिस ने यह क़ौल नक़ल किया है। इस मअनी की ताईद इस हदीस से भी होती है: "परहेज़गार (तक़ी) अपनी गुफ़्तगू में मुहतात और कम-गो होता है, और मुत्तक़ी का मरतबा आम मोमिनीन और इताअत-गुज़ार लोगों से भी बुलंद होता है।" मुत्तक़ी वह शख्स है जो अपने नेक आमाल और इख़लास के साथ की जाने वाली दुआ के ज़रिए अपने आप को अल्लाह तआला के अज़ाब से महफूज़ रखता है। लफ़्ज़ "तक्वा" दरअसल इस मअनी से निकला है कि इंसान अपने और किसी नापसंदीदा चीज़ के दरमियान एक हिफ़ाज़ती रुकावट क़ायम कर ले, ताकि वह उसके ज़रर और नुक़सान से महफूज़ रहे।
It is reported that Ibn Masud said one day to his nephew, 'Nephew, do you see how many people there are?' 'Yes,' he replied. He said, 'There is no good in any of them except those who turn to Allah or are godfearing.' Then he added,	रिवायत है कि हज़रत अब्दुल्लाह बिन मसऊद ने एक दिन अपने भतीजे से फ़रमाया: "भतीजे! क्या तुम देखते हो कि कितने ज़्यादा लोग हैं?" उसने जवाब दिया: "जी हाँ।" उन्होंने फ़रमाया: "इनमें कोई भलाई नहीं, सिवाय उन लोगों के जो अल्लाह की तरफ़ रुजू

‘Nephew, do you see how many people there are?’ ‘Yes,’ he replied. He said, ‘There is no good in them except for a man of knowledge or a student.’ Abu Yazid al-Bistami said, ‘A godfearing person is someone whose words are for Allah when he speaks and whose actions are for Allah when he acts.’ Abu Sulayman ad-Darani said, ‘The godfearing are those from whose hearts love of appetites has been stripped away.’ It is said that a godfearing person is one is protected from shirk and free of hypocrisy. Ibn ‘Atiyyah said, ‘This is false because someone could be like that and still be a deviator.’ In relation to taqwa ‘Umar ibn al-Khattab asked Ubayy, ‘Have you ever taken a path between thorny bushes?’ ‘Yes,’ he replied. He asked, ‘What did you do?’ He said, ‘I gathered in my clothes and was careful.’ He said, ‘That is taqwa.’ Taqwa	करते हैं या मुत्तक्री हैं।" फिर उन्होंने दोबारा फ़रमाया: "भतीजे! क्या तुम देखते हो कि कितने ज़्यादा लोग हैं?" उसने कहा: "जी हाँ।" उन्होंने फ़रमाया: "इनमें कोई भलाई नहीं, सिवाय एक आलिम या इल्म हासिल करने वाले तालिब-ए-इल्म के।" अबू यज़ीद अल-बिस्तामी ने कहा: "मुत्तक्री वह शख्स है जिसकी गुप्तगू अल्लाह के लिए हो जब वह बोले, और उसके आमाल अल्लाह के लिए हों जब वह अमल करे।" अबू सुलैमान अद-दारानी ने फ़रमाया: "मुत्तक्री वे लोग हैं जिनके दिलों से ख़्वाहिशात-ए-नफ़्स की मुहब्बत निकाल दी गई हो।" यह भी कहा गया है कि मुत्तक्री वह है जो शिर्क से महफूज़ हो और निफ़ाक़ से पाक हो। इब्न अतिय्या ने इस क़ौल के बारे में कहा: "यह तआरिफ़ दुरुस्त नहीं, क्योंकि मुमकिन है कोई शख्स ऐसा हो और फिर भी गुमराह हो।" तक्वा के बारे में रिवायत है कि हज़रत उमर बिन खत्ताब ने हज़रत उबय्य बिन काब से पूछा: "क्या तुम कभी काँटों वाली झाड़ियों के दरमियान से गुज़रे हो?" उन्होंने जवाब दिया: "जी हाँ।" हज़रत उमर ने पूछा: "तुमने क्या किया?" उन्होंने कहा: "मैंने अपने कपड़े समेट लिए और निहायत एहतियात के साथ
--	---

	चलता रहा।" हज़रत उमर ने फ़रमाया: "यही तक्वा है।" तक्वा यह है कि इंसान ज़िंदगी के रास्ते में गुनाहों, नाफ़रमानियों और अल्लाह की नाराज़गी के काँटों से बचते हुए पूरी एहतियात और होशियारी के साथ चले।
Taqwa comprises all good. It is Allah's directive to all human beings and it is the best acquisition a person can acquire. Abu-d-Darda' was asked, 'Your companions utter poetry but you do not memorise any of it.' He refuted them, declaiming: A man wants to be given his desire but Allah only gives him what He wills. A man says, 'My profit and my property, but taqwa of Allah is the best thing that can be acquired.	तक्वा तमाम भलाईयों और नेकियों को अपने अंदर समेटे हुए है। यह अल्लाह तआला की तरफ़ से तमाम इंसानों के लिए एक आम हिदायत और हुक्म है, और यह सबसे बेहतरीन ज़ाद-ए-राह है जिसे कोई इंसान हासिल कर सकता है। हज़रत अबू अद-दरदाँ से पूछा गया: "आपके साथी अशआर पढ़ते और याद रखते हैं, लेकिन आप उनमें से कुछ याद नहीं करते?" तो उन्होंने इस बात की तरदीद करते हुए एक शेर पढ़ा। एक आदमी चाहता है कि उसे उसकी ख़्वाहिश हासिल हो जाए। लेकिन अल्लाह तआला उसे सिर्फ़ वही अता करता है जो वह चाहता है। एक आदमी कहता है: 'मेरा नफ़ा और मेरी जायदाद।' लेकिन अल्लाह का तक्वा वह बेहतरीन चीज़ है जो हासिल की जा सकती है।
Ibn Maja related in his Sunan	इब्न माजा ने अपनी सुनन में रिवायत

that the Prophet ﷺ said, ‘After taqwa, nothing benefits a believer more than a righteous wife. When he commands her, she obeys him. When he looks at her, she delights him. When he swears by her, she carries out the oath. When he is absent from her, she is faithful to him in her person and his property.’	किया है कि नबी करीम ﷺ ने फ़रमाया: "तक्वा के बाद किसी मोमिन के लिए कोई चीज़ नेक बीवी से बढ़कर फ़ायदेमंद नहीं है। जब वह उसे कोई हुक्म दे तो वह उसकी इताअत करे, जब वह उसकी तरफ़ देखे तो वह उसे खुश कर दे, जब वह उसके बारे में क़सम खाए तो वह उस क़सम को पूरा कर दे, और जब वह उससे दूर हो तो वह अपनी ज़ात और उसके माल के बारे में अमानतदार और वफ़ादार रहे।"
those who believe in the Unseen and establish the prayer and spend from what We have provided for them; [2:3]	ग़ैब पर ईमान रखते हैं, नमाज़ क़ायम करते हैं, और जो कुछ हम ने उन्हें अता किया है उस में से ख़र्च करते हैं। [2:3]
those who believe	जो ईमान रखते हैं
The word ‘believe’ here means to hold to be true. Linguistically iman (faith, belief) is affirmation. In the Revelation the words of the brothers of Yūsuf: ‘You will not believe us’ mean ‘believe that we are telling the truth’. Qatadah is reported as saying, ‘Son of Adam, if the only time you want to do good is when	लफ़ज़ ‘युअमिनून’ (ईमान रखते हैं) का मतलब यहाँ सच्चा मानना और तस्दीक करना है। लुग़त के एतबार से ईमान का मतलब तस्दीक और इकरार है। वही में हज़रत यूसुफ़ के भाइयों के इस क़ौल: (और आप हमारी बात मानने वाले नहीं हैं) का मतलब है: “आप यह यक़ीन नहीं करेंगे कि हम सच बोल रहे हैं।” क़तादा से रिवायत है कि उन्होंने फ़रमाया: “ऐ इब्र-ए-आदम! अगर तुम

you are feeling enthusiastic, you should know that it is the nature of the self to incline to ennui, indifference and boredom; the believer, however, is the one who spurs himself on; the believer is the one who takes heart; the believer is the one who remains strong. The believers are those who cry out to Allah night and day. By Allah, a true believer continues to say, 'O Lord', secretly and openly until it is answered secretly and openly.'	सिर्फ़ उसी वक़्त नेकी करना चाहते हो जब तुम्हारे अंदर जोश और रग़बत हो, तो जान लो कि नफ़्स की फ़ितरत उकताहट, बे-रग़बती और सुस्ती की तरफ़ माइल होती है। लेकिन मोमिन वह है जो अपने आप को उभारता है, मोमिन वह है जो हिम्मत बाँधता है, मोमिन वह है जो साबित-क़दम रहता है। मोमिन वह लोग हैं जो रात-दिन अल्लाह को पुकारते रहते हैं। अल्लाह की क़सम! सच्चा मोमिन पोशीदा और अलानिया तौर पर बराबर 'ऐ मेरे रब!' कहता रहता है, यहाँ तक कि उसकी दुआ पोशीदा और अलानिया दोनों तरह क़बूल कर ली जाती है।"
In the Unseen	ग़ैब पर।
In the language of the Arabs, the word ghayb (Unseen) denotes everything which is hidden from you. It is used for the setting of the sun. Mughibah is used for a woman when her husband is absent. We fall into a ghaybah, meaning a hole in the ground. Ghayabah is a forest, which is a group of trees into which one disappears. It is also used for low-lying ground, because it is	अरबों की ज़बान में ग़ैब हर उस चीज़ को कहते हैं जो तुम से पोशीदा हो और तुम्हारी निगाह से ओझल हो। यह लफ़्ज़ सूरज के ग़ुरूब होने के लिए भी इस्तेमाल होता है। मुगीबह उस औरत को कहा जाता है जिसका शौहर ग़ैर-हाज़िर हो। अरब कहते हैं: "हम ग़ैबह में गिर गए", यानी ज़मीन के एक गड्ढे में गिर गए। ग़याबह जंगल को भी कहते हैं, यानी दरख़्तों का ऐसा झुंड जिसमें आदमी नज़रों से ओझल हो जाए। इसी तरह यह लफ़्ज़ नशीबी ज़मीन के लिए

out of sight.	भी इस्तेमाल होता है, क्योंकि वह निगाहों से छिपी हुई होती है।
Scholars disagree about the meaning of the word here. Some say that what is meant by ‘Unseen’ in this ayah is Allah Himself. Ibn al-‘Arabi said that this is weak. Others have said that it is the Decree; others that it is the Quran and the unseen things it contains; others that the Unseen are those matters about which the Messengers report which are beyond the scope of human intellect: the signs of the Last Hour, the punishment of the grave, the Gathering, the Resurrection, the Sirat, the Scales, the Garden and the Fire. Ibn ‘Atiyyah said that these statements are not mutually exclusive. The Unseen refers to all of them.	उलमा ने यहाँ "ग़ैब" के मानी के बारे में इख़्तिलाफ़ किया है। बाज़ का कहना है कि इस आयत में "ग़ैब" से मुराद खुद अल्लाह तआला हैं। हालांकि, इब्न अल-अरबी ने इस क़ौल को ज़ईफ़ करार दिया है। बाज़ दीगर उलमा ने कहा है कि इससे मुराद तक्दीर है। कुछ ने कहा है कि इससे मुराद कुरआन मजीद और उसमें बयान किए गए ग़ैबी उमूर हैं। और बाज़ ने कहा है कि ग़ैब से मुराद वह तमाम उमूर हैं जिनकी ख़बर रसूलों ने दी है और जो इंसानी अक़ल की दस्तरस से बाहर हैं, जैसे: क़ियामत की निशानियाँ, अज़ाब-ए-क़ब्र, हश्र व नश्र, दोबारा ज़िंदा किया जाना, सिरात, मीज़ान, जन्नत, और जहन्नम। इब्न अतिय्या ने फ़रमाया कि ये अक़वाल एक दूसरे के मुखालिफ़ नहीं हैं। ग़ैब इन सब उमूर को शामिल है।
It is, in fact, the prescribed faith indicated in the hadith of Jibril when he said to the Prophet ﷺ, ‘Tell me about faith (iman)’ He replied, ‘It is to believe in Allah, His angels,	दरहक़ीक़त ग़ैब पर ईमान वही मुकर्रर ईमान है जिसकी तरफ़ हदीस-ए-जिब्रील में इशारा किया गया है, जब जिब्रील ने नबी करीम ﷺ से पूछा: “मुझे ईमान के बारे में बताइए।” आप

His Books, His Messengers, and the Last Day, and to believe in the decree, both its good and its evil.’ He said, ‘You have spoken the truth.’ ‘Abdullah ibn Masud said, ‘There is no faith better for the believer than faith in the Unseen.’ Then he recited, ‘Those who believe in the Unseen.’	ﷺ ने फ़रमाया: “ईमान यह है कि तुम अल्लाह पर, उसके फ़रिश्तों पर, उसकी किताबों पर, उसके रसूलों पर, यौम-ए-आखिरत पर ईमान लाओ, और तक्दीर पर भी ईमान लाओ, ख़्वाह उसकी भलाई हो या बुराई।” जिब्रील ने कहा: “आप ने सच फ़रमाया।” अब्दुल्लाह बिन मसऊद ने फ़रमाया: “मोमिन के लिए ग़ैब पर ईमान से बेहतर कोई ईमान नहीं।” फिर उन्होंने यह आयत तिलावत की: “जो ग़ैब पर ईमान रखते हैं।”
In the Quran we find: ‘We are never absent (ghaibin)’ and also: ‘Those who fear their Lord in the Unseen. Allah cannot be seen by the eyes and cannot be seen in this dimension of existence but He is not absent to investigation and deduction. The believers believe that they have a powerful Lord who will repay all their actions. They fear Him in their hearts and fear Him when they are alone, where others cannot see them, through their knowledge that He is aware of them. These	कुरआन-ए-करीम में आता है: “और हम कभी ग़ायब नहीं होते।” और एक और मक़ाम पर फ़रमाया: “जो अपने रब से बिन देखे डरते हैं।” अल्लाह तआला को आँखों से नहीं देखा जा सकता और न ही इस वुजूदी जहत् में वह नज़र आते हैं, लेकिन वह तहक़ीक़ व इस्तिदलाल से पोशीदा नहीं हैं। मोमिन इस बात पर ईमान रखते हैं कि उनका एक ज़बरदस्त और क़ादिर रब है जो उनके तमाम आमाल का बदला देगा। वह अपने दिलों में उससे डरते हैं और तन्हाई में भी उससे ख़ौफ़ रखते हैं, जहाँ दूसरे लोग उन्हें नहीं देख सकते, क्योंकि उन्हें इल्म है कि अल्लाह तआला उनसे पूरी तरह बाख़बर है। ये आयात

ayahs agree and there is no contradiction in them. Praise be to Allah!	आपस में मुवाफ़िक़ हैं और उनमें कोई तज़ाद नहीं है। तमाम तारीफ़ें अल्लाह ही के लिए हैं!
‘Unseen’ is also said to mean their consciences and hearts. According to this understanding, the words ‘they believe in the Unseen’ mean ‘they believe in their hearts’. In other words, their hearts are filled with faith in contradistinction to the hearts of the hypocrites which are empty of faith. That is what al-Hasan said. A poet said: We believed in the Unseen when our people were praying to idols before Muhammad came.	"ग़ैब" से मुराद उन के ज़मीर और दिल भी लिया गया है। इस तफ़्सीर के मुताबिक़ "वह ग़ैब पर ईमान रखते हैं" का मतलब यह है कि "वह अपने दिलों से ईमान रखते हैं"। यानी उनके दिल ईमान से भरपूर हैं, बरख़िलाफ़ मुनाफ़िक़ों के दिलों के जो ईमान से ख़ाली होते हैं। यही बात हसन बसरी ने फ़रमाई है। एक शायर ने कहा: "हम ग़ैब पर ईमान लाए, जब कि हमारी क़ौम ..." "मुहम्मद ﷺ के आने से पहले हमारी क़ौम बुतों की इबादत करती थी।"
and establish	और क़ायम करते हैं
Establishing the prayer means performing it together with its pillars, sunnas and positions at the correct time as will be explained. Qama here does not have the normal meaning of ‘stand’ but rather means to continue with and firmly	नमाज़ क़ायम करने का मतलब यह है कि उसे उसके अरकान, सुन्नतों और आदाब के साथ, मुक़र्रर वक़्त पर अदा किया जाए, जैसा कि आगे वज़ाहत की जाएगी। यहाँ "अक़ामा" (क़ायम करना) अपने आम मानी "खड़ा होना" के लिए इस्तेमाल नहीं हुआ, बल्कि इसका मतलब है किसी चीज़ को पाबंदी के

establish.	साथ जारी रखना, उसकी हिफाज़त करना, और उसे मज़बूती से क़ायम रखना।
The call known as the iqamah of the prayer is well-known. It is sunnah with the majority so that, if someone fails to recite it, he does not have to repeat the prayer. Al-Awza'i, 'Ata', Mujāhid, and Ibn Abi Laylā, however, made it obligatory and anyone who forgets it has to repeat the prayer. The literalists said that. It is related from Malik, and Ibn al-'Arabi preferred that because, he said, it is found in the hadith about the Bedouin, 'Do the iqamah'. So he ﷺ commanded him to do the iqamah as he commanded the takbir, facing the qiblah and wudu'. He said, 'You now have the hadith and it supports you in repeating one of the two transmissions from Malik that agree with the hadith: the iqamah is a fard.' Some scholars say that if someone abandons it intentionally, he should repeat the prayer. That	नमाज़ की इक़ामत (यानी नमाज़ के आगाज़ से पहले कही जाने वाली इक़ामत) मशहूर व मारूफ़ है। जुमहूर उलमा के नज़दीक इक़ामत सुन्नत है, लिहाज़ा अगर कोई शख्स इसे छोड़ दे तो उस पर नमाज़ दोहराना लाज़िम नहीं होता। अलबत्ता औज़ाई, अता, मुजाहिद और इब्न अबी लैला के नज़दीक इक़ामत वाजिब है, और जो शख्स इसे भूल जाए उसे नमाज़ दोबारा पढ़नी चाहिए। ज़ाहिरी उलमा का भी यही क़ौल है। यह राय इमाम मालिक से भी एक रिवायत में मन्कूल है, और इब्न अल-अरबी ने इसी क़ौल को तरजीह दी है। उन्होंने कहा कि इसकी ताईद उस हदीस से होती है जिसमें एक अरबी के बारे में नबी करीम ﷺ ने फ़रमाया: "इक़ामत कहो।" चुनाँचे आप ﷺ ने उसे इक़ामत का हुक्म उसी तरह दिया जिस तरह तकबीर कहने, क़िबला-रुख़ होने और वुजू करने का हुक्म दिया था। इब्न अल-अरबी कहते हैं: "अब तुम्हारे पास हदीस मौजूद है, और यह इमाम मालिक से मन्कूल दो रिवायतों में से उस रिवायत की ताईद

is not because it is obligatory since, if it that were the case, those who forget and those who abandon it deliberately would be subject to the same ruling. It is on account of making light of the Sunnah. Allah knows best.	करती है जो हदीस के मुवाफ़िक़ है, यानी यह कि इक़ामत फ़र्ज़ है।" बाज़ उलमा का कहना है कि अगर कोई शख्स इक़ामत को जान-बूझ कर तर्क कर दे तो उसे नमाज़ दोबारा पढ़नी चाहिए। ताहम यह इस वजह से नहीं कि इक़ामत फ़र्ज़ है, क्योंकि अगर वह वाक़ई फ़र्ज़ होती तो भूल जाने वाले और जान-बूझ कर छोड़ने वाले दोनों का हुक्म एक ही होता। बल्कि नमाज़ दोहराने का हुक्म इस लिए दिया गया है कि उसने सुन्नत को हल्का जाना और उसकी अहमियत को कम समझा। और अल्लाह ही बेहतर जानता है।
Scholars disagree about whether someone who hears the iqamah should hurry to the prayer or not. Most believe that he should not hurry, even if he fears that he will miss a rakah, because the Prophet said, 'When the iqamah for the prayer is given, do not come running to it. Come walking. You must be tranquil. Pray what you catch and complete what you miss.' Abu Hurayrah related it and Muslim transmitted it. The	उलमा का इस बारे में इख़िलाफ़ है कि जो शख्स इक़ामत सुने, आया उसे नमाज़ के लिए जल्दी करनी चाहिए या नहीं। जुमहूर उलमा का मौक़िफ़ यह है कि उसे जल्दी नहीं करनी चाहिए, अगरचे उसे यह अंदेशा हो कि उसकी एक रकअत फ़ौत हो जाएगी, क्योंकि नबी करीम ﷺ ने फ़रमाया: "जब नमाज़ की इक़ामत कही जाए तो उसकी तरफ़ दौड़ते हुए न आओ, बल्कि चलते हुए आओ। तुम पर सुकून और वक़ार लाज़िम है। जितनी नमाज़ पाओ, उसे पढ़ लो, और जो रह जाए उसे बाद में पूरा कर लो।"

Messenger of Allah ﷺ also said, ‘When the prayer is called, none of you should run to it. He should walk. He must be sedate and grave. Pray what you catch and finish what you missed.’ This is a text. Part of the reason for this is that when someone hurries, he is breathless and his entry into the prayer, recitation and humility are disordered. A group of the Salaf, including Ibn ‘Umar and Ibn Masud, disagree about hurrying when someone fears they will miss the prayer. Ishaq said, ‘He hurries when he fears that he will miss the rakah.’ Something similar is related from Malik. He said, ‘There is no harm in someone on a horse making the horse go faster.’ Some of them interpret it as the difference between someone walking and someone sitting because a rider does not become breathless in the same way that someone on foot does.	यह रिवायत अबू हुदैरहँ से मरवी है और इमाम मुस्लिम ने इसे नक़ल किया है। रसूलुल्लाह ﷺ ने यह भी फ़रमाया: “जब नमाज़ के लिए बुलाया जाए तो तुम में से कोई उसकी तरफ़ दौड़ता हुआ न आए, बल्कि चल कर आए। उस पर सुकून और संजीदगी लाज़िम है। जितनी नमाज़ पाए, उसे अदा कर ले, और जो रह जाए उसे मुकम्मल कर ले।” यह एक वाज़ेह नस है। इस हुक्म की एक वजह यह भी है कि जब आदमी जल्दी और दौड़-धूप करता है तो उसका साँस फूल जाता है, जिस के बाइस नमाज़ में उसका दाख़िल होना, क़िराअत करना और खुशू व खुजू बरक़रार रखना मुतअस्सिर होता है। अलबत्ता सलफ़ की एक जमाअत, जिन में इब्र उमरँ और इब्र मसऊदँ शामिल हैं, इस मसअले में मुख़लिफ़ राय रखती है। उन के नज़दीक अगर किसी शख्स को अंदेशा हो कि नमाज़ फ़ौत हो जाएगी तो जल्दी करने में हरज नहीं। इस्हाक़ ने कहा: “जब उसे ख़ौफ़ हो कि रकअत छूट जाएगी तो वह जल्दी करे।” इसी तरह का क़ौल इमाम मालिक से भी मन्कूल है। उन्होंने फ़रमाया: “अगर कोई शख्स घोड़े पर सवार हो और वह अपने घोड़े की रफ़्तार तेज़ कर दे तो उस में कोई हरज
--	--

	नहीं।" बाज़ उलमा ने इस क़ौल की यह तौजीह की है कि सवार और पैदल चलने वाले में फ़र्क़ है, क्योंकि सवार शख्स उसी तरह साँस नहीं फुलाता जिस तरह पैदल चलने वाला या दौड़ने वाला शख्स फूल जाता है।
It is more appropriate to follow the sunnah of the Messenger of Allah ﷺ in every case. As in the hadith, you should walk and be sedate and grave because you are in the prayer. It is impossible for the report of the Prophet ﷺ to be different to what he reported. Just as someone who enters the prayer must be grave and still, so the one who is walking to it must be like that so that he obtains its reward. Part of what indicates the soundness of this is what we mentioned of the Sunnah and what ad-Darimi transmitted in the Musnad from Muhammad ibn Yūsuf from Sufyan from Muhammad ibn Ajlan from al-Maqbari from Ka'b ibn 'Ujrah that the Messenger of Allah said, 'When you have done wudu',	हर हाल में रसूलुल्लाह ﷺ की सुन्नत की पैरवी करना ज़्यादा मुनासिब है। चुनाँचे हदीस के मुताबिक़ आदमी को नमाज़ की तरफ़ चल कर जाना चाहिए और सुकून, वक्रार और संजीदगी इस्तिथार करनी चाहिए, क्योंकि वह गोया नमाज़ ही की हालत में होता है। यह मुमकिन नहीं कि नबी करीम ﷺ की एक रिवायत दूसरी रिवायत के खिलाफ़ हो। जिस तरह नमाज़ में दाखिल होने वाले के लिए वक्रार, सुकून और ठहराव ज़रूरी है, उसी तरह नमाज़ की तरफ़ चल कर जाने वाले को भी यही कैफ़ियत इस्तिथार करनी चाहिए ताकि वह उसका अज़्र हासिल कर सके। इस की सेहत पर दलालत करने वाली चीज़ों में वह सुन्नतें भी शामिल हैं जिन का ज़िक्र गुज़र चुका है, और वह हदीस भी है जिसे दारिमी ने अपनी मुसन्नद में मुहम्मद बिन यूसुफ़, सुफ़यान, मुहम्मद बिन अज्जलान, मक़बरी और कअब बिन उजरह के वास्ते से रिवायत किया है

go to the mosque. Do not entangle your fingers together. You are in the prayer.’ In this hadith, which is sound, the Prophet ﷺ forbade what is less than hurrying. He made him like someone in prayer. These sunnahs clarify the meaning of His words: ‘hasten to the remembrance of Allah’. It does not just mean getting there quickly. This is about action. This is how Malik explained it. It is what is correct regarding that. Allah knows best.	कि रसूलुल्लाह ﷺ ने फ़रमाया: “जब तुम वुजू कर लो तो मस्जिद की तरफ़ जाओ, और अपनी उँगलियों को एक दूसरे में न फँसाओ, क्योंकि तुम नमाज़ ही में हो।” इस सहीह हदीस में नबी करीम ﷺ ने ऐसी चीज़ से भी मना फ़रमाया जो दौड़ने और जल्दी करने से कम दर्जे की है। आप ﷺ ने मस्जिद की तरफ़ जाने वाले को नमाज़ पढ़ने वाले के हुक्म में क़रार दिया है। ये सुन्नतें अल्लाह तआला के इस फ़रमान के मानी को वाज़ेह करती हैं: “अल्लाह के ज़िक्र की तरफ़ दौड़ो” इस का मतलब सिर्फ़ जिस्मानी तौर पर तेजी से पहुँचना नहीं है, बल्कि इससे मुराद अमली तौर पर उस की तरफ़ मुतवज्जेह होना और उस की कोशिश करना है। इमाम मालिक ने भी इस आयत की यही तफ़्सीर बयान की है, और इसी मसअले में यही क़ौल ज़्यादा दुरुस्त है। और अल्लाह ही बेहतर जानता है।
Scholars disagree about the interpretation of ‘complete what you missed’ and ‘finish what you missed’ and whether they mean the same thing. It is said that they mean the same and that ‘finish’ is undefined and ‘completion’ is	उलमा ने “जो तुम से रह जाए उसे पूरा करो” और “जो तुम से फ़ौत हो जाए उसे मुकम्मल करो” के अल्फ़ाज़ की तफ़्सीर में इख़्तिलाफ़ किया है, और इस बारे में भी कि आया दोनों का एक ही मानी है या नहीं। एक क़ौल यह है कि दोनों का मानी एक ही है, और

meant by it. Allah says: ‘When the prayer is finished’ and: ‘When you have completed your rites’. It is said that they have different meanings, and that this is sound. The difference depends on whether the person joins at the beginning or end of the prayer. The first view is held by a group of the people of Malik, including Ibn al-Qasim. The person concerned finishes what he missed of the Fatihah and surah and so it is about building on actions and finishing words. Ibn ‘Abd al-Barr said that this is well known in the School. Ibn Khuwayzimandad said, ‘That is the view of our people. It is the view of al-Awza‘i, ash-Shafi‘i, Muhammad ibn al-Hasan, Ahmad ibn Hanbal, at-Ṭabari and Dawud ibn ‘Alī. Ashhab, who is the one Ibn ‘Abd al-Ḥakam mentioned, related it from Malik.’	“मुकम्मल करो” का लफ़्ज़ दरअसल “पूरा करो” के मानी में इस्तेमाल हुआ है। अल्लाह तआला फ़रमाता है: “जब नमाज़ पूरी हो जाए” और: “जब तुम अपने मनासिक मुकम्मल कर चुके” इस क़ौल के मुताबिक़ दोनों ताबीरात में कोई फ़र्क़ नहीं। दूसरा क़ौल यह है कि दोनों के मानी मुख़्तलिफ़ हैं, और यही क़ौल ज़्यादा दुरुस्त क़रार दिया गया है। इस फ़र्क़ का तअल्लुक इस बात से है कि आदमी नमाज़ में इब्तिदा में शामिल हुआ है या आख़िर में। पहला क़ौल इमाम मालिक़ के अस्हाब की एक जमाअत का है, जिन में इब्न अल-क़ासिम़ भी शामिल हैं। उन के नज़दीक नमाज़ में बाद में शामिल होने वाला शख्स सूरह फ़ातिहा और सूरत वग़ैरह में जो कुछ रह गया हो उसे पूरा करता है, लिहाज़ा यहाँ मुराद साबिक़ा आमाल पर बुनियाद करना और बाक़ी अल्फ़ाज़ को मुकम्मल करना है। इब्न अब्दुलबर्र ने कहा: “मालिकी मज़हब में यही मारूफ़ क़ौल है।” इब्न ख़ुवैज़मंदाद ने कहा: “यही हमारे अस्हाब का मज़हब है, और यही इमाम औज़ाई, इमाम शाफ़ई, मुहम्मद बिन हसन, इमाम अहमद बिन हम्बल, तबरी और दाऊद बिन अली का भी क़ौल है।” अशहब ने भी, जिन का
--	--

	ज़िक्र इब्न अब्दुलहकम ने किया है, यही रिवायत इमाम मालिक से नक़ल की है।
‘Isa related from Ibn al-Qasim from Malik that what the person catches is the end of his prayer and he finishes the actions and words. That is the view of the Kufans. Qadi Abu Muhammad ‘Abd al-Wahhab said, ‘It is the well known position of the school of Malik.’ Ibn ‘Abd al-Barr said, ‘I think that those who make what he caught the beginning of his prayer take account of takbir al-ihram because that only happens at the beginning of the prayer, and the tashahhud and taslim are only at the end of it. So they say that what he caught is the beginning of his prayer, supported by the Sunnah in his words, “Complete”. “Completion” is the end.’ Others cite ‘finish’ and someone who finishes something has missed it. The reading of ‘complete’, however, is more common.	ईसा ने इब्न अल-कासिम के वास्ते से इमाम मालिक से रिवायत किया है कि नमाज़ में बाद में शामिल होने वाला शख्स जितनी नमाज़ इमाम के साथ पा लेता है, वह उसकी नमाज़ का आखिरी हिस्सा शुमार होता है, और बाद में वह बाक़ी अफ़आल और अक़वाल को मुकम्मल करता है। यही कूफ़ियों का भी मज़हब है। काज़ी अबू मुहम्मद अब्दुल वहहाब ने कहा: “मालिकी मज़हब में यही मारूफ़ और मशहूर क़ौल है।” इब्न अब्दुलबर ने कहा: “मेरा ख़याल है कि जो लोग यह कहते हैं कि नमाज़ी ने इमाम के साथ जितनी नमाज़ पाई, वह उसकी नमाज़ का इब्तिदाई हिस्सा है, वह तकबीर-ए-तहरीमा को बुनियाद बनाते हैं, क्योंकि तकबीर-ए-तहरीमा सिर्फ़ नमाज़ के आगाज़ में होती है, जबकि तशहहुद और सलाम सिर्फ़ नमाज़ के इख़िताम पर होते हैं।” लिहाज़ा वह कहते हैं कि जो हिस्सा उसने इमाम के साथ पाया, वह उसकी नमाज़ का आगाज़ है, और इसकी ताईद सुन्नत से भी होती है, क्योंकि हदीस में ‘अतिम्मू’ (पूरा करो) के अल्फ़ाज़ आए

	हैं। "इतमाम" (पूरा करना) किसी चीज़ के आखिरी हिस्से को मुकम्मल करने के मानी में आता है। दूसरे उलमा हदीस के लफ़्ज़ 'फ़ाक़दू' (मुकम्मल करो / क़ज़ा करो) से इस्तिदलाल करते हैं, क्योंकि अरबी में जो शख्स किसी चीज़ को क़ज़ा करता है, वह दरअसल उस चीज़ को पूरा करता है जो उससे रह गई हो। ताहम 'अतिम्मू' (पूरा करो) वाली रिवायत ज़्यादा मशहूर और ज़्यादा मारूफ़ है।
The iqamah precludes you from beginning any supererogatory prayers. The Messenger of Allah ﷺ said, 'When the iqamah for the prayer is given, there is no prayer except the prescribed one.' Muslim and others transmitted it. If someone has started a supererogatory prayer, he does not break it off because Allah says: 'Do not make your actions of no worth.' That is especially the case if he has prayed a rakah of it. It is also said that he stops it because of the general meaning of the hadith. Allah knows best.	इक़ामत कहे जाने के बाद किसी नई नफ़ल नमाज़ का आगाज़ नहीं किया जा सकता। रसूलुल्लाह ﷺ ने फ़रमाया: "जब नमाज़ की इक़ामत कही जाए तो फ़र्ज़ नमाज़ के सिवा कोई नमाज़ नहीं होती।" इस हदीस को इमाम मुस्लिम और दीगर मुहद्दिसीन ने रिवायत किया है। अलबत्ता अगर कोई शख्स पहले ही नफ़ल नमाज़ शुरू कर चुका हो तो एक क़ौल के मुताबिक़ वह उसे नहीं तोड़ेगा, क्योंकि अल्लाह तआला फ़रमाता है: "और अपने आमाल को बातिल न करो।" ख़ुसूसन जब वह उसकी एक रकअत अदा कर चुका हो। एक दूसरा क़ौल यह है कि उसे नफ़ल नमाज़ तोड़ देनी चाहिए, क्योंकि हदीस का उमूमी मफ़हूम इसी बात पर दलालत करता

	है। और अल्लाह ही बेहतर जानता है।
Scholars disagree about someone who enters the mosque without having prayed the two rakahs of fajr and then the iqamah is given. Malik says that he should join the prayer with the imam without praying them. If he has not entered the mosque and does not fear missing a rakah of it, he may pray them outside the mosque. He should not pray them in any of the courtyard connected to a mosque in which the Jumu'ah is prayed. If he fears that he will miss the first rakah of the communal prayer, he should enter and pray with the imam and then pray the two rakahs after sunrise if he wishes. I think that it is better to pray them after sunrise than to leave them. Abu Hanifah and his people say that if someone fears that he will miss both rakahs and not catch the imam before he rises from ruku' in the second rakah, he	उलमा का उस शख्स के बारे में इख्तिलाफ़ है जो मस्जिद में इस हाल में दाखिल हो कि उसने फ़ज्र की दो सुन्नत रकअतें न पढ़ी हों, और फिर इक़ामत कह दी जाए। इमाम मालिक के नज़दीक उसे सुन्नतें पढ़े बग़ैर इमाम के साथ नमाज़ में शामिल हो जाना चाहिए। अलबत्ता अगर वह अभी मस्जिद में दाखिल न हुआ हो और उसे यह अंदेशा न हो कि नमाज़ की एक रकअत फ़ौत हो जाएगी, तो वह मस्जिद से बाहर फ़ज्र की दो सुन्नत रकअतें अदा कर सकता है। ताहम उसे मस्जिद के उस सहन या मुल्हक़ा हिस्से में ये रकअतें नहीं पढ़नी चाहिए जो मस्जिद का हिस्सा शुमार होता हो और जहाँ जुमा की नमाज़ अदा की जाती हो। अगर उसे ख़ौफ़ हो कि जमाअत की पहली रकअत छूट जाएगी, तो उसे मस्जिद में दाखिल होकर इमाम के साथ नमाज़ अदा करनी चाहिए, और फिर अगर चाहे तो सूरज तुलू होने के बाद फ़ज्र की दो सुन्नत रकअतें अदा कर ले। मुसन्निफ़ कहते हैं: "मेरे नज़दीक उन्हें तर्क करने के बजाय सूरज तुलू होने के बाद अदा करना बेहतर है।" इमाम अबू हनीफ़ा और उनके अस्थाब का कहना है कि

should join the prayer. If he hopes to catch one rakah, he should pray fajr outside the mosque and then join with the imam.	अगर किसी शख्स को अंदेशा हो कि वह दोनों रकअतें (यानी सुन्नत-ए-फ़ज्र) पढ़ने की सूरत में इमाम को दूसरी रकअत के रुकू से सर उठाने से पहले नहीं पा सकेगा, तो उसे फ़ौरन जमाअत में शामिल हो जाना चाहिए। लेकिन अगर उसे उम्मीद हो कि वह कम अज़ कम एक रकअत जमाअत के साथ पा लेगा, तो वह मस्जिद से बाहर फ़ज्र की सुन्नतें अदा करे और फिर इमाम के साथ जमाअत में शामिल हो जाए।
That is also what al-Awza'i said, although he permits praying the rakahs in the mosque if the person is not afraid of missing the final rakah. Ath-Thawri said, 'If he fears missing a rakah, he should join the imam and not pray them. Otherwise he should pray them in the mosque.' Al-Hasan ibn Hayy (or hayyan) said, 'Once the iqamah has started, there are no voluntary prayers except for the two rakahs of fajr.' Ash-Shafi'i said, 'If someone enters the mosque when the iqamah for the prayer has been given, he joins with	इमाम औज़ाई का भी यही मौक़िफ़ है, अलबत्ता वह इस बात की इजाज़त देते हैं कि अगर किसी शख्स को आखिरी रकअत के फ़ौत होने का अंदेशा न हो तो वह मस्जिद के अंदर फ़ज्र की दो सुन्नत रकअतें अदा कर सकता है। इमाम सौरी ने फ़रमाया: "अगर उसे एक रकअत छूट जाने का ख़ौफ़ हो तो वह इमाम के साथ शामिल हो जाए और सुन्नतें न पढ़े। वरना वह मस्जिद में सुन्नतें अदा कर ले।" हसन बिन हय्य (या हय्यान) ने कहा: "जब इक़ामत शुरू हो जाए तो फ़ज्र की दो सुन्नत रकअतों के सिवा कोई नफ़ल नमाज़ नहीं है।" इमाम शाफ़ई ने फ़रमाया: "अगर कोई शख्स मस्जिद में उस वक़्त दाख़िल हो जब नमाज़ की इक़ामत कही जा चुकी

the imam. He does not pray the two rakahs of fajr either in the mosque or outside of the mosque.’ At-Tabari said the same. Ahmad ibn Hanbal also said that, relating from Malik, and it is the sound position concerning that since the Prophet ﷺ said, ‘When the iqamah for the prayer is given, then there is no prayer except the prescribed one.’ The two rakahs of fajr are either sunnah, excellent or meritorious. When there is a dispute, one takes the proof of the Sunnah.	हो, तो वह इमाम के साथ शामिल हो जाए। वह फ़ज्र की दो सुन्नत रकअतें न मस्जिद के अंदर पढ़े और न मस्जिद के बाहर।” इमाम तबरी का भी यही क़ौल है। इमाम अहमद बिन हम्बल ने भी यही मौक़िफ़ इख़्तियार किया है, और यह राय इमाम मालिक से भी रिवायत की गई है। इसी मसअले में यही क़ौल ज़्यादा सहीह मालूम होता है, क्योंकि नबी करीम ﷺ ने फ़रमाया: “जब नमाज़ की इक्रामत कही जाए तो फ़र्ज़ नमाज़ के सिवा कोई नमाज़ नहीं होती।” फ़ज्र की दो सुन्नत रकअतें बहरहाल सुन्नत, मुस्तहब या बाइस-ए-फ़ज़ीलत अमल हैं। और जब किसी मसअले में इख़िलाफ़ हो तो सुन्नत-ए-नबवी ﷺ की दलील को इख़्तियार किया जाता है।
Part of the evidence for the well known position of Malik and that of Abu Ḥanifah is what is related from Ibn ‘Umar who once arrived when the imam was praying the Subḥ prayer: he prayed fajr in Hafsaḥ’s room and then prayed with the imam. The argument of ath-Thawri and al-Awza‘i is what is related about ‘Abdullah	इमाम मालिक के मशहूर मौक़िफ़ और इमाम अबू हनीफ़ा के क़ौल की ताईद में एक दलील वह रिवायत है जो अब्दुल्लाह बिन उमर से मन्कूल है। एक मर्तबा वह उस वक़्त आए जब इमाम फ़ज्र की नमाज़ पढ़ा रहा था। चुनाँचे उन्होंने हज़रत हफ़सा के हुजरे में फ़ज्र की दो सुन्नत रकअतें अदा कीं, फिर इमाम के साथ नमाज़ में शामिल हो गए। इमाम सौरी और इमाम औज़ाई की दलील वह रिवायत है जो

ibn Masud. He entered the mosque when the iqamah had been given and he prayed fajr behind a pillar and then joined the prayer in the presence of Hudhayfah and Abu Musa. They said, 'If it is permitted to perform the supererogatory apart from the prayer outside the mosque, one is likewise permitted to do it inside the mosque.' Muslim related that 'Abdullah ibn Malik ibn Buḥaynah said, 'The iqamah for the Subh prayer had been given and the Messenger of Allah ﷺ saw a man praying while the muadhdhin was giving the iqamah. He said, "Are you praying Subh with four rakahs?"' This was the Messenger of Allah ﷺ objecting to the man praying the two rakahs of fajr inside the mosque while the imam was praying. It is possible that it is evidence that if the two rakahs of fajr are done in that situation they are sound, because he did not stop him

अब्दुल्लाह बिन मसऊद के बारे में मन्कूल है। वह मस्जिद में उस वक़्त दाखिल हुए जब इक़ामत कही जा चुकी थी। उन्होंने मस्जिद में एक स्तंभ के पीछे फ़ज़्र की सुन्नतें अदा कीं, फिर नमाज़ में शामिल हो गए, और यह सब हुज़ैफ़ा और अबू मूसा की मौजूदगी में हुआ। इन उलमा ने कहा: "जब मस्जिद के बाहर फ़र्ज़ नमाज़ के अलावा नफ़ल नमाज़ अदा करना जायज़ है तो इसी तरह मस्जिद के अंदर भी जायज़ होना चाहिए।" इमाम मुस्लिम ने रिवायत किया है कि अब्दुल्लाह बिन मालिक बिन बुहेना ने बयान किया: "फ़ज़्र की नमाज़ की इक़ामत कही जा चुकी थी। रसूलुल्लाह ﷺ ने एक शख्स को देखा जो मुअज़्ज़िन के इक़ामत कहने के दौरान नमाज़ पढ़ रहा था। आप ﷺ ने फ़रमाया: 'क्या तुम फ़ज़्र की नमाज़ चार रकअत पढ़ रहे हो?'" यह दरअसल रसूलुल्लाह ﷺ की तरफ़ से उस शख्स पर नकीर थी जो इमाम के नमाज़ शुरू करने के बाद मस्जिद के अंदर फ़ज़्र की दो सुन्नत रकअतें पढ़ रहा था। ताहम यह भी मुमकिन है कि इस हदीस से इस बात पर इस्तिदलाल किया जाए कि अगर इस हालत में फ़ज़्र की दो सुन्नत रकअतें पढ़ ली जाएँ तो वह दुरुस्त शुमार होंगी, क्योंकि नबी

praying while he was able to do so. Allah knows best.	करीम ﷺ ने उसे नमाज़ पढ़ने से रोका नहीं, हालाँकि आप ﷺ ऐसा करने पर क़ादिर थे। और अल्लाह ही बेहतर जानता है।
the prayer	नमाज़
Linguistically the root of the word ‘salah’ (prayer) means supplication. Evidence for that is the words of the Prophet ﷺ, ‘When one of you is invited for food, he should accept. If he is not fasting, he should eat, and if he is fasting, he should make supplication (salla).’ When Asma’ gave birth to ‘Abdullah ibn az- Zubayr, she sent him to the Prophet ﷺ. Asma’ said, ‘He wiped his head and prayed (salla) for him,’ meaning made supplication. Some scholars say that the obligatory prayer is meant and that he prayed two rakahs and left, but the first opinion is better known. It is the view of most scholars. Allah Almighty says: ‘Pray (salla), for them’ ,meaning to make supplication for them.	लगावी एतिबार से "सलात" (नमाज़) का अस्ल मानी दुआ करना है। इस की दलील नबी करीम ﷺ का यह फ़रमान है: "जब तुम में से किसी को खाने की दावत दी जाए तो उसे क़बूल करना चाहिए। अगर वह रोज़े से न हो तो खाना खाए, और अगर रोज़े से हो तो दुआ करे (सल्ला)।" इसी तरह जब अस्माँ ने अब्दुल्लाह बिन जुबैर को जन्म दिया तो उन्हें नबी करीम ﷺ के पास भेजा। अस्माँ बयान करती हैं: "आप ﷺ ने उनके सर पर हाथ फेरा और उनके लिए दुआ की (صَلَّى لَهُ)।" यानी आप ﷺ ने उनके हक़ में दुआ फ़रमाई। बाज़ उलमा का कहना है कि यहाँ नमाज़-ए-फ़र्ज़ मुराद है, यानी नबी करीम ﷺ ने दो रकअत नमाज़ अदा की और फिर तशरीफ़ ले गए। लेकिन पहला क़ौल ज़्यादा मशहूर है और यही जुमहूर उलमा का मज़हब है। अल्लाह तआला का फ़रमान है: "और उनके लिए दुआ कीजिए (وَصَلِّ عَلَيْهِمْ)" यानी उनके हक़

	में दुआ कीजिए।
Some people say that it is derived from the word sala, which is the cord in the middle of the back which separates at the base of the spine and goes round it. From it is also derived the word musalla for the second horse in a horse race, because at the end of the race, his head is at the rump (salwan) of the horse in front. So the derivation of the salah from this is either because it is the second pillar after the declaration of faith, and so it resembles someone coming second immediately behind another horse, or because the back of the one who bows in the prayer is bent, in which case sala refers to the bending of the horse's back. 'Ali said, using the word with this meaning, 'The Messenger of Allah ﷺ came first, Abu Bakr second (salla) and 'Umar third.'	बाज़ लोगों का कहना है कि "सलात" का लफ़्ज़ "सला" से माखूज़ है, जिससे मुराद कमर के दरमियान वाक़े वह रग या हिस्सा है जो रीढ़ की हड्डी के निचले हिस्से में जुदा होता है और उसके गिर्द फैला होता है। इसी माद्दे से "मुसल्ला" का लफ़्ज़ भी निकला है, जो घुड़दौड़ में दूसरे नंबर पर आने वाले घोड़े के लिए इस्तेमाल होता है, क्योंकि दौड़ के इख़िताम पर उसका सर आगे वाले घोड़े के सरीन (सल्वान) के करीब होता है। इस एतिबार से "सलात" का इस माद्दे से मुश्तक़ होना दो तरह से समझा जा सकता है: (1) इस लिए कि नमाज़ कलिमा-ए-शहादत के बाद इस्लाम का दूसरा रुक्न है, लिहाज़ा वह उस घोड़े से मुशाबह है जो दौड़ में पहले घोड़े के फ़ौरन बाद दूसरे नंबर पर आता है। (2) या इस लिए कि नमाज़ में रुकू करने वाले की कमर झुक जाती है, और इस सूरत में "सला" से मुराद घोड़े की पुश्त का झुकना है। हज़रत अली॑ ने इसी मानी में यह लफ़्ज़ इस्तेमाल करते हुए फ़रमाया: "रसूलुल्लाह ﷺ पहले थे, अबू बक्र॑ दूसरे (सल्ला) थे, और उमर॑ तीसरे थे।
It is also said that it comes	यह भी कहा गया है कि "सलात" का

from the idea of abiding in something, as '*roasting in a red-hot fire*' in According to this, it means holding to worship to the extent which Allah has commanded. It is also said to be taken from the idea of warming a branch with fire to straighten it and make it supple by heat since *sila*' means roasting by fire, thus referring to how the one who prays straightens himself by his efforts and makes himself supple and humble. Salah can also mean supplication and mercy, as in 'O Allah, bless (*salli*) Muḥammad.' Salah is also an undefined act of worship. Allah says: '*Their prayer (salah) at the House*', meaning their worship. Salah can also mean supererogatory prayer as in '*Instruct your family to do the prayer (salah).*' It can also mean glorification. Salah can also mean recitation as in. So it is a word with several meanings. Salah is also a house in which one prays as Ibn Faris said. It is

लफ़्ज़ किसी चीज़ पर क़ायम रहने और उससे वाबस्ता रहने के मानी से माखूज़ है, जैसे अरबी में "आग में जलना और उस पर क़ायम रहना" के मफ़हूम में इस्तेमाल होता है। इस तफ़्सीर के मुताबिक़ सलात से मुराद अल्लाह तआला की मुकर्रर की हुई इबादत पर साबित-क़दमी और उसकी पाबंदी करना है। यह भी कहा गया है कि यह उस अमल से माखूज़ है जिसमें किसी टेढ़ी शाख़ को आग की हरारत से गर्म करके सीधा और नरम बनाया जाता है। चूँकि "सिला" आग में भूनने और गर्म करने को कहते हैं, इसलिए नमाज़ को सलात कहा गया, क्योंकि नमाज़ी अपनी इबादत और मुजाहदे के ज़रिए अपने नफ़्स को सीधा करता है और अपने आप को नरम, फ़रोतन और आजिज़ बनाता है। सलात का मानी दुआ और रहमत भी होता है, जैसा कि इस दुआ में है: "ऐ अल्लाह! मुहम्मद ﷺ पर रहमत नाज़िल फ़रमा।" सलात एक ग़ैर-मुतअय्यन इबादत के मानी में भी आती है। अल्लाह तआला का फ़रमान है: "बैतुल्लाह के पास उनकी सलात" यानी उनकी इबादत। सलात का इतलाक़ नफ़ल नमाज़ पर भी होता है, जैसा कि फ़रमान-ए-इलाही है: "अपने घर वालों को सलात का हुक्म दो।" यह लफ़्ज़

also. said that <i>salah</i> is a name simply for this act of worship. Allah would not leave a time without a Law and would not leave a Law without a prayer. Abu Nasr al-Qushayri narrated that. According to this position, it has no derivation.	तस्बीह के मानी में भी इस्तेमाल होता है। इसी तरह सलात का मानी क़िराअत भी आता है। पस सलात एक ऐसा लफ़्ज़ है जिसके मुतअद्दिद मआनी हैं। इब्न फ़ारिस ने कहा है कि सलात उस घर को भी कहते हैं जिसमें नमाज़ अदा की जाए। यह भी कहा गया है कि सलात महज़ इस मख़सूस इबादत का नाम है और इसका किसी और लफ़्ज़ से इश्तिकाक़ नहीं। अबू नसर कुशैरी ने यह क़ौल नक़ल किया है कि अल्लाह तआला कभी भी किसी ज़माने को शरीअत के बग़ैर नहीं छोड़ता, और न किसी शरीअत को नमाज़ के बग़ैर छोड़ता है। इस क़ौल के मुताबिक़ "सलात" एक मुस्तक़िल नाम है और इसका कोई इश्तिकाक़ (लुग़वी माख़ज़) नहीं है।
According to the position of the majority, those who study the roots disagree about whether it remains connected to its original linguistic root, and the same is true of <i>iman</i>, <i>zakat</i>, <i>siyam</i>, <i>hajj</i> and <i>shar'</i>, which are subjected to legal preconditions and rulings, or whether that addition acts in the same way as it did before	जुमहूर उलमा के नज़दीक उसूल-ए-फ़िक़्ह और लुग़त के माहिरीन का इस बारे में इख़िलाफ़ है कि सलात, ईमान, ज़कात, सियाम, हज्ज और शरअ जैसे अल्फ़ाज़, जब शरीअत ने उनके लिए मख़सूस शराइत और अहक़ाम मुक़र्रर कर दिए, तो क्या वह अपने अस्त लुग़वी मानी से वाबस्ता रहे या नहीं? यानी क्या शरीअत की तरफ़ से उनमें जो इज़ाफ़ा और तख़सीस हुई है, वह उन अल्फ़ाज़

the Shariah was revealed. The first is sounder because the Shariah is confirmed in Arabic and the Qur'an was revealed in clear Arabic. But the Arabs do have an arbitrary usage where nouns are concerned, such as the word <i>dabbah</i>, which is used for everything that crawls (<i>dabba</i>), and then the Arabs apply it specifically to animals. That is also the custom with nouns in the Shariah. Allah knows best.	को उनके पहले लुगवी मानी पर बरकरार रखती है, या उन्हें एक नए शरई मफ़हूम में मुन्तक़िल कर देती है? पहला क़ौल ज़्यादा दुरुस्त मालूम होता है, क्योंकि शरीअत अरबी ज़बान ही में वारिद हुई है और कुरआन-ए-करीम भी वाज़ेह अरबी ज़बान में नाज़िल किया गया है। अलबत्ता अरबों के हाँ बाज़ अस्मा के इस्तेमाल में तख़्सीस भी पाई जाती है। मिसाल के तौर पर "दाब्बह" का लफ़्ज़ अस्ल में हर उस चीज़ के लिए बोला जाता है जो ज़मीन पर चलती या रेंगती हो, लेकिन अरब आम तौर पर इसे ख़ास तौर पर जानवरों के लिए इस्तेमाल करते हैं। शरीअत में भी बहुत से अल्फ़ाज़ का मामला इसी तरह है; यानी वह अस्ल लुगवी मानी रखते हुए एक ख़ास और मुतअय्यन शरई मफ़हूम के लिए इस्तेमाल होने लगते हैं। और अल्लाह ही बेहतर जानता है।
There is disagreement about what is meant by 'the prayer' in this instance. It is said that it is both the obligatory and voluntary prayers, and that is the sound position because the expression is undefined.	इस बारे में इख़िलाफ़ है कि यहाँ "नमाज़" (अस-सलात) से क्या मुराद है। एक क़ौल यह है कि इससे फ़र्ज़ और नफ़ल दोनों नमाज़ें मुराद हैं, और यही क़ौल ज़्यादा दुरुस्त है, क्योंकि यहाँ लफ़्ज़ "अस-सलात" आम और ग़ैर-मुतअय्यन अंदाज़ में इस्तेमाल हुआ है, जो दोनों किस्म की नमाज़ों को शामिल

	करता है।
The prayer is also cause for provision. Allah says: <i>'Instruct your family to do the prayer'</i> as will be explained in <i>Taha</i>, Allah willing. It is healing for stomach pain and other things. Ibn Mājah related that Abu Hurayrah said, 'The Prophet ﷺ rested at midday as I did and I prayed and sat down. The Prophet ﷺ turned to me and said in Persian, "Is your stomach bothering you?" "Yes, Messenger of Allah," I answered. He said, 'Get up and pray. There is healing in the prayer.'"	नमाज़ रिज़क़ के हुसूल का सबब भी है। अल्लाह तआला फ़रमाता है: "अपने घर वालों को नमाज़ का हुक्म दो।" इस आयत की वज़ाहत, इंशा-अल्लाह, सूरह ताहा की तफ़्सीर में आएगी। नमाज़ पेट के दर्द और दीगर बीमारियों के लिए शिफ़ा भी है। इब्न माजह॒ ने रिवायत किया है कि अबू हुरैरह॒ ने फ़रमाया: "मैं नबी करीम ﷺ के साथ दोपहर के वक़्त आराम कर रहा था। फिर मैंने नमाज़ पढ़ी और बैठ गया। नबी करीम ﷺ मेरी तरफ़ मुतवज्जेह हुए और फ़ारसी ज़बान में फ़रमाया: 'क्या तुम्हारा पेट तुम्हें तकलीफ़ दे रहा है?' मैंने अर्ज़ किया: "जी हाँ, या रसूलल्लाह ﷺ!" आप ﷺ ने फ़रमाया: "उठो और नमाज़ पढ़ो, क्योंकि नमाज़ में शिफ़ा है।"
The prayer is only valid if all its preconditions and obligatory elements are fulfilled. Purity is one of its preconditions. Its rulings will be explained in <i>Surat an-Nisa'</i> and <i>Surat al-Maidah</i>. The private parts must be covered, which will be dealt with in <i>Surat al-Araf</i>, Allah willing. Its obligatory elements are facing the <i>qiblah</i>, the	नमाज़ उसी वक़्त दुरुस्त होती है जब उसकी तमाम शराइत और फ़राइज़ पूरे किए जाएँ। तहारत नमाज़ की शराइत में से एक है। इसके अहकाम की वज़ाहत सूरह निसा और सूरह माइदा में, इंशा-अल्लाह, बयान की जाएगी। इसी तरह सतर का ढाँपना भी नमाज़ की शराइत में शामिल है, और उसका बयान सूरह आराफ़ में आएगा, इंशा-अल्लाह। नमाज़ के फ़राइज़ यह हैं:

intention, the <i>takbir al-ihram</i> and standing for it, reciting the <i>Fatihah</i> and standing for it, <i>ruku'</i> and being still in it, rising from <i>ruku'</i> and standing up straight, prostration and being still in it, rising from prostration, sitting between the two prostrations and being still in it, the second prostration and being still in it, and the final sitting and being still in it.	किबला-रुख होना, नियत करना, तकबीर-ए-तहरीमा कहना और उसके लिए खड़ा होना, सूरह फ़ातिहा की क़िराअत करना और उसके लिए क़ियाम करना, रुकू करना और उसमें इत्मीनान इस्तिथार करना, रुकू से उठना और सीधा खड़ा होना, सज्दा करना और उसमें इत्मीनान इस्तिथार करना, सज्दे से उठना, दोनों सज्दों के दरमियान बैठना और उसमें इत्मीनान इस्तिथार करना, दूसरा सज्दा करना और उसमें इत्मीनान इस्तिथार करना, और आखिरी क़अदा करना और उसमें इत्मीनान के साथ बैठना। ये तमाम उमूर नमाज़ के बुनियादी फ़राइज़ में शुमार होते हैं।
The source for all this is the hadith of Abu Hurayrah about the man who had prayed incorrectly and whom the Prophet ﷺ then taught. He told him, 'When you stand for the prayer, perform <i>wudu'</i> thoroughly and then face the <i>qiblah</i>. Say the <i>takbir</i> and then recite what is easy of the Qur'an. Then bow and remain still in it and then come up until you are standing straight.	इस तमाम बहस की अस्ल दलील हज़रत अबू हु़रैरहँ की वह हदीस है जिसमें एक शख्स ने नमाज़ ग़लत तरीक़े से अदा की थी, फिर नबी करीम ﷺ ने उसे नमाज़ का सही तरीक़ा सिखाया। आप ﷺ ने फ़रमाया: "जब तुम नमाज़ के लिए खड़े हो तो अच्छी तरह वुज़ू करो, फिर क़िब्ला रुख हो जाओ। इसके बाद तकबीर कहो, फिर कुरआन में से जो तुम्हारे लिए आसान हो वह पढ़ो। फिर रुकू करो और रुकू में इत्मीनान से ठहरो। फिर सर उठाओ यहाँ तक कि

Then prostrate until you are still in prostration. Then come up until you are still in sitting. Then do the like of that in all your prayer.’ Muslim transmitted it. Something similar is found in the hadith of Rifaah ibn Rafi‘ transmitted by ad-Daraqutni and others.	सीधे खड़े हो जाओ। फिर सज्दा करो और सज्दे में इत्मिनान से ठहरो। फिर सर उठाओ और बैठने की हालत में इत्मिनान से ठहरो। फिर अपनी पूरी नमाज़ में इसी तरह करते रहो।" इस हदीस को इमाम मुस्लिम ने रिवायत किया है। इसी मफ़हूम की एक और रिवायत हज़रत रिफ़ाअह बिन राफ़ि की हदीस में भी मौजूद है, जिसे इमाम दारकुतनी और दूसरे मुहद्दिसीन ने रिवायत किया है।
Our scholars said that the Prophet ﷺ explained to us the pillars of the prayer. He said nothing about the <i>iqamah</i>, raising the hands, the amount of recitation, the <i>takbirs</i> for the movements, the glorification in <i>ruku</i> and prostration, the middle sitting, the <i>tashahhud</i> for the final sitting and the <i>salam</i>. As for the <i>iqamah</i> and the specific requirement of the <i>Fatihah</i>, they have already been discussed. As for raising the hands, a group of scholars and most <i>fuqaha</i> say that it is not mandatory based on the hadith of Abu Hurayrah and Rifaah ibn Rafi‘. Dawud and	हमारे उलेमा ने फ़रमाया कि नबी करीम ﷺ ने हमें नमाज़ के अरकान बयान फ़रमा दिए हैं। आप ﷺ ने इक़ामत, रफ़अुल-यदैन्, क़िराअत की मिक्दाद, नमाज़ के इंतिक़ालात की तक्बीरों, रुकूअ और सज्दे की तस्बीहात, दरमियानी क़अदा, आख़िरी क़अदे के तशहहुद और सलाम के बारे में कुछ नहीं फ़रमाया। जहाँ तक इक़ामत और सूरह फ़ातिहा की तअय्युन का तअल्लुक़ है, इन दोनों का ज़िक़्र पहले गुज़र चुका है। रहा रफ़अुल-यदैन् का मसअला, तो एक जमाअत-ए-उलेमा और जमहूर फ़ुक्कहा का कहना है कि यह वाजिब नहीं है। उनकी दलील अबू हु़रैरह और रिफ़ाअह बिन राफ़िअ़ रज़ियल्लाहु अन्हु की

some of his people say that it is mandatory for the <i>takbir al-ihram</i>, and some of his people said it is mandatory to raise the hands in <i>ihram</i>, <i>ruku'</i> and coming up from <i>ruku'</i>; and if someone does not raise his hands, his prayer is invalid. That is the view of al-Humaydi and it is related from al-Awzai. They cite as evidence the words of the Prophet ﷺ: 'Pray as you saw me praying' which al-Bukhari transmitted. They said, 'It is obligatory for us to act as we saw him acting because he conveys Allah's desire.'	हदीस है। जबकि दाऊद अज़-ज़ाहिरी और उनके बाज़ अस्थाब कहते हैं कि तकबीर-ए-तहरीमा के वक़्त रफ़अुल-यदैन वाजिब है। उनके बाज़ पैरोकारों ने यह भी कहा है कि एहराम बाँधते वक़्त, रुकूअ में जाते वक़्त और रुकूअ से उठते वक़्त रफ़अुल-यदैन करना वाजिब है, और अगर कोई रफ़अुल-यदैन न करे तो उसकी नमाज़ बातिल है। यही राय अल-हुमैदी की है, और यही क्रौल अल-अवज़ाई से भी मनकूल है। उनकी दलील नबी करीम ﷺ का यह फ़रमान है: "नमाज़ इस तरह पढ़ो जिस तरह तुमने मुझे नमाज़ पढ़ते हुए देखा है।" इस हदीस को मुहम्मद बिन इस्माईल अल-बुखारी ने रिवायत किया है। वह कहते हैं: "हम पर लाज़िम है कि हम आप ﷺ के अमल के मुताबिक़ अमल करें, क्योंकि आप ﷺ अल्लाह तआला की मुराद और हुक्म को पहुँचाने वाले हैं।"
As for <i>takbirs</i> other than the <i>takbir al-ihram</i>, Most say that they are sunnah based on the hadith. Ibn al-Qāsim, Mālik's companion, said, 'If someone omits three or more <i>takirs</i> in the prayer, he should prostrate before the <i>salam</i>. If he does not	तकबीर-ए-तहरीमा के अलावा दूसरी तकबीरों के बारे में जमहूर उलेमा का कहना है कि वे सुन्नत हैं, और उनकी दलील हदीस है। इमाम मालिक के शागिर्द इब्न अल-क़ासिम ने कहा: "अगर कोई शख्स नमाज़ में तीन या उससे ज़्यादा तकबीरें छोड़ दे तो उसे

prostrate, then the prayer is invalid. If he forgets one or two *takbirs*, he also prostrates for forgetfulness, but owes nothing if he forgets.' It is related from him that omitting one *takbir* does not amount to forgetfulness. This indicates that he thinks that all the *takbirs* are obligatory but omitting a few is overlooked. Asbagh ibn al-Faraj and 'Abdullah ibn 'Abd al-Hakam, 'There is nothing due from anyone who does not say any of the *takbirs* in the prayer including the *takbir al-ihram*. If he omits it out of forgetfulness, then he prostrates for forgetfulness. If he does not prostrate, he owes nothing. However one must not omit the *takir al-ihram* deliberately because it is one of the sunnahs of the prayer. If someone does so, he has acted badly, but owes nothing and his prayer is valid.'

सलाम से पहले सज्दा-ए-सह करना चाहिए। अगर वह सज्दा-ए-सह न करे तो उसकी नमाज़ बातिल हो जाएगी। और अगर वह एक या दो तकबीरें भूल जाए तो भी सज्दा-ए-सह करेगा, लेकिन अगर भूल जाने की वजह से छोड़ दे तो उस पर कोई और ज़िम्मेदारी नहीं होगी।" उनसे यह रिवायत भी मन्कूल है कि एक तकबीर का तर्क सज्दा-ए-सह को वाजिब नहीं करता। इससे मालूम होता है कि उनके नज़दीक तमाम तकबीरें वाजिब हैं, लेकिन उनमें से चंद के तर्क को माफ़ कर दिया जाता है। इसी राय के क़ाइल असबग़ बिन अल-फ़राज़ और अब्दुल्लाह बिन अब्दुल-हकम भी थे। जो शख्स नमाज़ में किसी भी तकबीर को तर्क कर दे, बिशमूल तकबीर-ए-तहरीमा, उस पर कोई चीज़ लाज़िम नहीं आती। अगर वह भूल कर उसे छोड़ दे तो वह सज्द-ए-सह करे। और अगर सज्द-ए-सह भी न करे तो भी उस पर कुछ लाज़िम नहीं। अलबत्ता तकबीर-ए-तहरीमा को जान-बूझ कर तर्क नहीं करना चाहिए, क्योंकि यह नमाज़ की सुन्नतों में से एक सुन्नत है। अगर कोई शख्स जान-बूझ कर उसे तर्क करे तो उसने बुरा अमल किया, लेकिन उस पर कोई कफ़ारा या तलाफ़ी लाज़िम नहीं, और उसकी

	नमाज़ दुरुस्त है।
This is sound and it is the position of most of the <i>fugaha'</i> of the cities among the Shafiis and Kufans, a group of the people of hadith and the Malikis except for the position of Ibn al-Qasim. Al-Bukhari has a 'Chapter on completing the <i>takbir</i> in <i>ruku</i> and prostration'. He includes the hadith of Mutarrif ibn 'Abdullah who said: "Imran ibn Husayn and I prayed behind 'Ali ibn Abi Talib. When he went into <i>sajdah</i> he said the <i>takbir</i> and when he raised his head, he said the <i>takbir</i>. When he got up after two <i>rakahs</i>, he said the <i>takbir</i>. When he finished the prayer, 'Imran ibn Husayn took hold of my hand and said, 'This man reminded me of the prayer of Muhammad ﷺ," or he said, "He prayed the prayer of Muhammad with us."	यह कौल दुरुस्त है, और यही मौक़िफ़ अक्सर शहरों के फ़ुक़्हा का है, जिन में शाफ़इया और कूफ़ी फ़ुक़्हा, अहल-ए-हदीस की एक जमाअत, और मालिकिया शामिल हैं, सिवाय इब्न अल-क्कासिम के मौक़िफ़ के। इमाम बुखारी ने "रुकूअ और सज्दे में तकबीर को मुकम्मल करने का बाब" क़ायम किया है। इस में उन्होंने मुतररिफ़ बिन अब्दुल्लाह की रिवायत नक़ल की है, जो कहते हैं: "मैं और इमरान बिन हुसैन, अली बिन अबी तालिब के पीछे नमाज़ पढ़ रहे थे। जब वह सज्दे में जाते तो तकबीर कहते, और जब सज्दे से सर उठाते तो भी तकबीर कहते। और जब दो रकअतों के बाद खड़े होते तो भी तकबीर कहते। जब उन्होंने नमाज़ मुकम्मल कर ली तो इमरान बिन हुसैन ने मेरा हाथ पकड़ कर कहा: 'इस शख्स ने मुझे मुहम्मद ﷺ की नमाज़ याद दिला दी।' या उन्होंने कहा: 'उन्होंने हमारे साथ मुहम्मद ﷺ की तरह नमाज़ पढ़ी है।'"
'Ikrimah said, 'I saw a man at the <i>Maqam</i> saying the <i>takbir</i> every time he did <i>ruku</i>' and	अकरिमा ने कहा: "मैंने मक़ाम-ए-इब्राहीम के पास एक शख्स को देखा

rose, when he stood up, and when he went down. I told Ibn ‘Abbas and he said, “If that is not indeed the prayer of the Prophet, you have no mother!”” By this chapter al-Bukhari indicated to you that the <i>takbir</i> was not done by them. Abu Ishaq as-Sabi‘i related from Yazid ibn Abī Maryam that Abu Musa al-Ashari said, ‘On the day of the Battle of the Camel, ‘Ali led us in a prayer which reminded us of the prayer of the Prophet ﷺ. He said the <i>takbir</i> every time he went down and came up, stood and sat.’ Abu Musa said, ‘Either we forgot it or abandoned it deliberately.’	जो हर बार रुकूअ करते वक़्त, रुकूअ से सर उठाते वक़्त, खड़े होते वक़्त, और झुकते वक़्त तकबीर कहता था। मैंने यह बात इब्न-ए-अब्बास से ज़िक्र की तो उन्होंने फ़रमाया: 'अगर यह नबी ﷺ की नमाज़ नहीं है तो फिर तुम्हारी माँ ही न हो!'” इमाम बुखारी ने इस बाब के ज़रिये इस तरफ़ इशारा किया है कि लोगों ने इस अमल (यानी इंतिकालात-ए-नमाज़ में तकबीरें कहने) को छोड़ दिया था। अबू इस्हाक अस-सबीई ने यज़ीद बिन अबी मरयम से रिवायत किया है कि अबू मूसा अशअरी ने फ़रमाया: "जंग-ए-जमल के दिन अली ने हमें ऐसी नमाज़ पढ़ाई जिसने हमें नबी करीम ﷺ की नमाज़ याद दिला दी। वह जब भी झुकते या उठते, खड़े होते या बैठते, हर इंतिकाल के वक़्त तकबीर कहते थे।" अबू मूसा ने फ़रमाया: "या तो हम उसे भूल गए थे, या फिर हमने जान-बूझकर उसे तर्क कर दिया था।"
Do you see them repeating the prayer? So how can it be said that omission of the <i>takbir</i> invalidates the prayer? If that had been the case, there would have been no difference between <i>sunnah</i> and <i>fard</i>. When the thing on its own is	क्या आप देखते हैं कि उन्होंने नमाज़ को दोबारा अदा किया हो? फिर यह कैसे कहा जा सकता है कि तकबीर को छोड़ देना नमाज़ को बातिल कर देता है? अगर ऐसा होता तो सुन्नत और फ़र्ज़ के दरमियान कोई फ़र्क बाक़ी न रहता। जब एक तकबीर बि-ज़ातिही वाजिब

not mandatory, then all of them are not mandatory. Success is by Allah.	नहीं है, तो फिर तमाम तकबीरों का वाजिब होना भी दुरुस्त नहीं। तौफ़ीक़ अल्लाह ही की तरफ़ से है।
According to the majority, <i>tasbih</i> in <i>ruku</i> and prostration are not mandatory based on the hadith already mentioned. Ishaq ibn Rāhawayh made them mandatory and said that someone who omits them must repeat the prayer since the Prophet ﷺ said, 'Exalt the Lord in <i>ruku</i> and entreat in supplication in prostration. It is fitting that it be answered.'	जम्हूर उलेमा के नज़दीक रुकूअ और सज्दे में तस्बीह कहना वाजिब नहीं है, इसकी दलील वह हदीस है जो पहले गुज़र चुकी है। अलबत्ता इस्हाक़ बिन राहवयह॒ ने इन तस्बीहात को वाजिब करार दिया है और कहा है कि जो शख्स इन्हें छोड़ दे उसे नमाज़ दोबारा पढ़नी चाहिए, क्योंकि नबी करीम ﷺ ने फ़रमाया: "रुकूअ में अपने رب की अज़मत बयान करो, और सज्दे में खूब दुआ करो, क्योंकि यह इस बात के ज़्यादा लायक़ है कि क़बूल की जाए।"
Scholars disagree about the sitting and <i>tashahhud</i>. Malik and his people say that the first sitting and its <i>tashahhud</i> are sunnahs. A group of scholars consider the first sitting to be mandatory and say that it is singled out among other obligations since prostration represents it, just as <i>araya</i> do with <i>muzabanah</i> and <i>qirad</i> does with wages [types of business transactions] and like standing for the <i>takbir al-ihram</i>	उलेमा का तशहूद और क़अदा-ए-ऊला के बारे में इख़िलाफ़ है। इमाम मालिक॒ और उनके अस्थाब का कहना है कि पहला क़अदा और उसका तशहूद सुन्नत हैं। जबकि उलेमा की एक जमाअत के नज़दीक पहला क़अदा वाजिब है। उनका कहना है कि यह दीगर वाजिबात से इस एतिबार से मुमताज़ है कि सज्दा-ए-सह उसकी तलाफ़ी कर देता है, जिस तरह कुछ फ़िक्ही मसाइल में आम हुक्म से इस्तिस्ना पाया जाता है, मसलन अराया का मामला मुज़ाबनह से और क़िराज़

when someone finds the imam bowing. They argue that if it had been <i>sunnah</i>, then someone who abandons it would not invalidate his prayer as the prayer is not invalidated by abandoning sunnahs of the prayer. Those who do not consider it mandatory say that if it had been one of the obligatory elements of the prayer, someone who forgot it would return to it and perform it, as is the case if he misses a prostration or <i>ruku</i>, and he would observe in it what he observes in <i>ruku</i> and prostration in order. Then he would prostrate for forgetting it as is done by someone who omits a <i>ruku</i> or prostration and then performs them. We find in the hadith of ‘Abdullah ibn Buhaynah that the Messenger of Allah ﷺ stood up from two rak‘ahs and forgot the <i>tashahhud</i>. People behind him said, ‘Glory be to Allah!’ He remained standing and they stood. When he finished the prayer, he did the two	(मुज़ारबत) का उजरत के कुछ अहकाम से मुस्तसना होना, या उस शख्स का तकबीर-ए-तहरीमा के लिए खड़े होना जिसे इमाम रुकूअ में मिल जाए। इन उलेमा की दलील यह है कि अगर पहला क़अदा महज़ सुन्नत होता तो उसके तर्क से नमाज़ में कोई खलल न आता, क्योंकि नमाज़ की सुन्नतों को छोड़ देने से नमाज़ बातिल नहीं होती। और जो उलेमा इसे वाजिब नहीं मानते, वह कहते हैं कि अगर यह नमाज़ के वाजिब अरकान में से होता तो जो शख्स इसे भूल जाता, वह उसकी तरफ़ वापस लौटता और उसे अदा करता, जैसा कि रुकूअ या सज्दा छूट जाने की सूरत में किया जाता है। नीज़ इसमें भी वही तरतीब मल्हूज़ रखी जाती जो रुकूअ और सज्दे के बारे में रखी जाती है। फिर इसकी वजह से सज्दा-ए-सह भी उसी तरह किया जाता जैसे कोई शख्स रुकूअ या सज्दा छोड़ दे और बाद में उसे अदा करे। हमें अब्दुल्लाह बिन बुहैना की हदीस में मिलता है कि रसूलुल्लाह ﷺ दो रकअतों के बाद खड़े हो गए और तशहहूद करना भूल गए। आप ﷺ के पीछे मौजूद लोगों ने कहा: "सुब्हानल्लाह!" मगर आप ﷺ खड़े रहे, चुनाँचे वह लोग भी खड़े हो गए। फिर जब आप ﷺ ने नमाज़ मुकम्मल कर ली
--	---

prostrations of forgetfulness before the <i>salam</i>. If sitting had been obligatory, forgetfulness would not cancel it because the obligations of the prayer are the same when they are omitted out of forgetfulness or deliberately.	तो सलाम से पहले दो सज्दे (सज्दा-ए-सह) किए। लिहाज़ा अगर क़अदा वाजिब होता तो महज़ भूल जाने की वजह से साक़ित न होता, क्योंकि नमाज़ के वाजिबात का हुक्म भूल कर छोड़ने और जान-बूझकर छोड़ने की सूरत में एकसाँ होता है।
There are five different positions about the ruling of the final sitting in the prayer. The first is that sitting is obligatory, the <i>tashahhud</i> is obligatory and the <i>salam</i> is obligatory. Those who said that include ash-Shafi'i and Ahmad ibn Hanbal in one transmission. Abu Musab related it from Malik and the people of Madinah in his <i>Mukhtasar</i>. Dawud also stated that. Ash-Shafi'i said, 'If someone omits the first <i>tashahhud</i> and the prayer on the Prophet ﷺ, he does not have to repeat the prayer, but he does the two prostrations of forgetfulness for omitting it. If he omits the final <i>tashahhud</i> out of forgetfulness or deliberately, he should	नमाज़ के आखिरी क़अदे के हुक्म के बारे में उलेमा के पाँच मुख्तलिफ़ अक़वाल हैं। पहला क़ौल यह है कि आखिरी क़अदा वाजिब है, तशहहुद वाजिब है, और सलाम भी वाजिब है। यह मौक़िफ़ इमाम शाफ़ई का है, और इमाम अहमद बिन हम्बल से भी एक रिवायत में यही मनकूल है। अबू मुसअब ने अपनी मुख्तसर में इमाम मालिक और अहल-ए-मदीना से भी यही क़ौल नक़ल किया है। इमाम दाऊद का भी यही मौक़िफ़ है। इमाम शाफ़ई ने फ़रमाया: "अगर कोई शख्स पहला तशहहुद और नबी करीम ﷺ पर दरूद पढ़ना छोड़ दे तो उसे नमाज़ दोहराने की ज़रूरत नहीं, अलबत्ता उसके तर्क की वजह से वह सज्दा-ए-सह करेगा। लेकिन अगर वह आखिरी तशहहुद को भूल कर या जान-बूझ कर छोड़ दे तो उसे नमाज़ दोबारा पढ़नी होगी।" इन उलेमा की दलील यह

repeat the prayer.’ They cite as evidence the fact that the Prophet ﷺ made the obligatory clear in the prayer because the basis of its obligation is undefined and requires clarification except for that which has a proof. The Prophet ﷺ said, ‘Pray as you saw me praying.’	है कि नबी करीम ﷺ ने नमाज़ में वाजिब उमूर को वाज़ेह फ़रमा दिया है, क्योंकि नमाज़ की फ़र्ज़ियत का अस्ल हुक्म मुजमल है और उसकी तफ़्सील व वज़ाहत की ज़रूरत है, सिवाय उन उमूर के जिन पर कोई मुस्तक़िल दलील मौजूद हो। इसी लिए नबी करीम ﷺ ने फ़रमाया: "नमाज़ उसी तरह पढ़ो जैसे तुमने मुझे नमाज़ पढ़ते हुए देखा है।"
The second view is that sitting, the <i>tashahhud</i> and the <i>salam</i> are not mandatory. They are all sunnahs. This is the view of some of the Basrans. It was the position of Ibrahim ibn ‘Ulayyah and he stated that the final sitting is analogous with the first. He differs from the majority and is aberrant, although he thought that anyone who omits any of that must repeat the prayer. Part of their argument is the hadith of ‘Abdullah ibn ‘Amr ibn al-‘As, that the Prophet ﷺ said, ‘When the imam raises his head from the final prostration in the prayer and then breaks his <i>wudu</i>’, his prayer is complete.’	दूसरा क़ौल यह है कि क़अदा, तशहूद और सलाम वाजिब नहीं हैं, बल्कि यह सब सुन्नत हैं। यह कुछ बसरी उलेमा का मौक़िफ़ है। यही राय इब्राहीम बिन उलैय्या की भी थी। उन्होंने कहा कि आख़िरी क़अदा पहले क़अदे के मुशाबेह है। इस मसअले में वह जम्हूर उलेमा से इख़िलाफ़ रखते हैं और उनका यह क़ौल शाज़ शुमार किया जाता है, अगरचे उनका यह भी कहना था कि जो शख्स इनमें से किसी चीज़ को छोड़ दे उसे नमाज़ दोबारा पढ़नी चाहिए। उनकी दलीलों में से एक अब्दुल्लाह बिन अम्र बिन अल-आस की हदीस है कि नबी करीम ﷺ ने फ़रमाया: "जब इमाम नमाज़ के आख़िरी सज्दे से सर उठा ले और फिर उसका वुजू टूट जाए तो उसकी नमाज़ मुकम्मल हो चुकी है।" लेकिन अबू

It is a hadith which is not sound according to Abu 'Amr. We explained it in <i>Kitab al-muqtabis</i>. This wording omits the <i>salam</i>, not the sitting.	उमर॑ के नज़दीक यह हदीस सहीह नहीं है। हमने किताब अल-मुक़तबस में इसकी वज़ाहत कर दी है। मज़ीद यह कि इस हदीस के अल्फ़ाज़ सलाम के तर्क पर दलालत करते हैं, न कि क़अदे के तर्क पर।
The third view is that sitting for the amount of time needed for the <i>tashahhud</i> is obligatory, but neither the <i>tashahhud</i> nor the <i>salam</i> are obligatory. Abu Hanifah and his people and a group of Kufans said that. They use as evidence the hadith of Ibn al-Mubarak from 'Abd ar-Rahman ibn Ziyad al-Ifriqi which is weak. In it the Prophet ﷺ said, 'When one of you sits at the end of his prayer and then breaks his <i>wudu</i>' before saying the <i>salam</i>, his prayer is complete.'	तीसरा क़ौल यह है कि आख़िरी क़अदे में इतनी देर बैठना जितनी मुद्दत में तशहहुद पढ़ा जा सकता है, वाजिब है, लेकिन न ख़ुद तशहहुद वाजिब है और न सलाम। यह इमाम अबू हनीफ़ा॑, उनके अस्थाब, और कुछ कूफ़ी उलेमा का मौक़िफ़ है। उनकी दलील इब्न अल-मुबारक॑ की रिवायत की हुई एक हदीस है जो अब्दुर्रहमान बिन ज़ियाद अल-इफ़्रीकी से मरवी है, और यह रावी ज़ईफ़ है। इस हदीस में नबी करीम ﷺ ने फ़रमाया: "जब तुम में से कोई शख्स अपनी नमाज़ के आख़िर में बैठ जाए, फिर सलाम फेरने से पहले उसका वुजू टूट जाए, तो उसकी नमाज़ मुकम्मल हो चुकी है।"
The fourth view is that sitting is obligatory and the <i>salam</i> is obligatory, but the <i>tashahhud</i> is not mandatory. Those who said that include Malik ibn Anas and his people and Ahmad ibn	चौथा क़ौल यह है कि आख़िरी क़अदा वाजिब है और सलाम भी वाजिब है, लेकिन तशहहुद वाजिब नहीं है। यह मौक़िफ़ इमाम मालिक बिन अनस॑, उनके अस्थाब, और इमाम अहमद बिन हम्बल॑ से एक रिवायत में मनकूल है।

Hanbal in one variant. Their argument is that no remembrance is mandatory except the <i>takbir al-ihram</i> and recitation of the <i>Umm al-Quran</i>.	उनकी दलील यह है कि नमाज़ में कोई ज़िक्र वाजिब नहीं, सिवाय तकबीर-ए-तहरीमा और उम्मुल-कुरआन (सूरह फ़ातिहा) की क़िराअत के।
The fifth view is that <i>tashahhud</i> and sitting are mandatory, but not the <i>salam</i>. The group took that view included Ishaq ibn Rāhawayh. Ishaq cited as proof the hadith of Ibn Masud when the Messenger of Allah ﷺ taught him the <i>tashahhud</i>. He told him, ‘When you have finished this, your prayer is complete. Make up what you owe.’ Ad-Daraqutni said that those words were inserted by Zuhayr into the hadith and then connected to the words of the Prophet ﷺ. Shababah separated it from Zuhayr and made it part of the words of Ibn Masud. His words are more likely to be correct than saying that it is interpolated into the hadith. Shababah is trustworthy. It is corroborated by Ghassan ibn	पाँचवाँ क़ौल यह है कि तशहहुद और क़अदा वाजिब हैं, लेकिन सलाम वाजिब नहीं है। यह मौक़िफ़ इस्तिथार करने वालों में इस्हाक़ बिन राहवयह॒ भी शामिल हैं। इस्हाक़॒ ने अपनी दलील के तौर पर अब्दुल्लाह बिन मसऊद॑ की हदीस पेश की है, जिसमें रसूलुल्लाह ﷺ ने उन्हें तशहहुद सिखाया था। फिर आप ﷺ ने फ़रमाया: "जब तुम यह मुकम्मल कर लो तो तुम्हारी नमाज़ मुकम्मल हो गई। अब अगर कुछ बाक़ी हो तो उसे पूरा कर लो।" इमाम दारकुतनी॑ ने कहा है कि यह अल्फ़ाज़ जुहैर ने हदीस में शामिल कर दिए थे और फिर उन्हें नबी करीम ﷺ के कलाम के साथ मिला दिया गया। लेकिन शबाबह ने इन अल्फ़ाज़ को जुहैर के कलाम से अलग बयान किया है और उन्हें अब्दुल्लाह बिन मसऊद॑ के अपने अल्फ़ाज़ क़रार दिया है। शबाबह की रिवायत इस बात के ज़्यादा क़रीब मालूम होती है कि यह अल्फ़ाज़ इब्न मसऊद॑ के हैं, न कि यह हदीस में

ar-Rabi' who makes the end part of the words of Ibn Masud rather than the Prophet ﷺ.	दाखिल किए गए इज़ाफ़ी अल्फ़ाज़ (इदराज) हैं। शबाबह सिक़ह रावी हैं, और उनकी ताईद ग़स्सान बिन अर-रबीअ की रिवायत भी करती है, जिसमें हदीस का आखिरी हिस्सा नबी करीम ﷺ के बजाय अब्दुल्लाह बिन मसऊद के कलाम के तौर पर बयान किया गया है।
Scholars disagree about the <i>salam</i>. It is said that it is mandatory and also that it is not mandatory. What is sound is that it is mandatory based on the hadith of 'A'ishah and the sound hadith of 'Ali that Abu Dawud and at-Tirmidhi transmitted. Sufyan ath-Thawri related from 'Abdullah ibn Muhammad ibn 'Aqil ibn al-Hanafiyyah from 'Ali that the Messenger of Allah ﷺ said, 'The key to the prayer is purification. Its <i>tahrim</i> is the <i>takbir</i>. Its release is the <i>salam</i>.' This hadith is the basis for the obligation of the <i>takbir</i> and the <i>salam</i> and it is agreed that nothing else satisfies them just as nothing else satisfies purification.' 'Abd ar-Rahman ibn Mahdi said, 'If a man were	उलेमा का सलाम के हुक्म के बारे में इख़िलाफ़ है। कुछ का कहना है कि सलाम वाजिब है, और कुछ के नज़दीक वाजिब नहीं है। राजिह और दुरुस्त क़ौल यह है कि सलाम वाजिब है। इसकी दलील हज़रत आयशा की हदीस और हज़रत अली की वह सहीह हदीस है जिसे इमाम अबू दाऊद और इमाम तिर्मिज़ी ने रिवायत किया है। सुफ़यान सौरी ने अब्दुल्लाह बिन मुहम्मद बिन अकील बिन अल-हनफ़िय्या से, और उन्होंने हज़रत अली से रिवायत किया है कि रसूलुल्लाह ﷺ ने फ़रमाया: "नमाज़ की कुंजी तहारत है, उसका तहरीम (यानी नमाज़ में दाखिल होना) तकबीर है, और उससे निकलना सलाम है।" यह हदीस तकबीर-ए-तहरीमा और सलाम के वाजिब होने की बुनियादी दलील है। इस पर इत्तिफ़ाक़ है कि इन दोनों के क़ायम-मक़ाम कोई दूसरी चीज़ नहीं हो

to begin his prayer with seventy of the names of Allah Almighty without saying the <i>takbir al-ihram</i>, it would not satisfy the requirement. If he breaks <i>wudu</i> before the <i>salam</i>, it does not satisfy it.' This is sound from 'Abd ar-Rahman ibn Mahdi by the hadith of 'Alī. He is an imam in the science of hadith, knowing the sound from the weak. He is enough for you.	सकती, जिस तरह तहारत के क़ायम-मक़ाम भी कोई दूसरी चीज़ नहीं हो सकती। अब्दुर्रहमान बिन महदी ने फ़रमाया: "अगर कोई शख्स नमाज़ शुरू करते वक़्त अल्लाह तआला के सत्तर नाम भी पढ़ ले, लेकिन तकबीर-ए-तहरीमा न कहे, तो यह काफ़ी नहीं होगा। और अगर सलाम से पहले उसका बुजू टूट जाए तो उसकी नमाज़ मुकम्मल नहीं होगी।" अब्दुर्रहमान बिन महदी का यह क़ौल हज़रत अली की हदीस की रौशनी में दुरुस्त है। वह इल्म-ए-हदीस के एक जलीलुल-क़द्र इमाम थे, जो सहीह और ज़ईफ़ हदीस में इम्तियाज़ रखने वाले थे। इस मसअले में उनका क़ौल आपके लिए काफ़ी है।
Scholars disagree about the obligation of the <i>takbir</i> at the beginning of the prayer. Ibn Shihāb az-Zuhri, Said ibn al-Musayyab, al-Awza'i, 'Abd ar-Rahman and a group said that the <i>takbir al-ihram</i> is not mandatory. What is related from Malik about someone following the imam indicates this view. What is sound in the School is that the <i>takbir al-ihram</i> is mandatory and it is an	उलेमा का नमाज़ के आगाज़ में कहीं जाने वाली तकबीर-ए-तहरीमा के वाजिब होने के बारे में इख़्तिलाफ़ है। इब्न शिहाब जुहरी, सईद बिन अल-मुसय्यब, औज़ाई, अब्दुर्रहमान और एक जमाअत का कहना है कि तकबीर-ए-तहरीमा वाजिब नहीं है। इमाम मालिक से मुक़्तदी के बारे में जो रिवायत मनकूल है, वह भी इसी मौक़िफ़ की तरफ़ इशारा करती है। लेकिन मालिकी मज़हब में सहीह और मुअतमद क़ौल यह है कि तकबीर-ए-

obligation and one of the pillars of the prayer. It is correct. Most agree on it. The evidence is found in the Sunnah for all those who oppose that.	तहरीमा वाजिब है, बल्कि नमाज़ के फ़राइज़ और अरकान में से एक रुक़न है। यही दुरुस्त क़ौल है, और ज़म्हूर उलेमा भी इसी के क़ाइल हैं। जो लोग इसके खिलाफ़ राय रखते हैं, उनके मुक़ाबले में सुन्नत-ए-नबविय्या में वाज़ेह दलाइल मौजूद हैं जो तकबीर-ए-तहरीमा के वाजिब होने को साबित करते हैं।
Scholars disagree about the wording used to enter into the prayer. Malik and his people and a group of scholars say that only the <i>takbir</i> satisfies it. It is not satisfied by the <i>shahadah</i>, <i>tasbih</i>, proclaiming Allah great or praising Him. This is the position of the Hijazis and most Iraqis. According to Mālik, only the expression '<i>Allahu akbar</i>' satisfies it and nothing else. That is similar to what ash-Shafi'i said. He said that it is satisfied by '<i>Allahu akbar</i>' and '<i>Allahu'l-Kabir</i>'. Malik's proof is the hadith of 'A'ishah who said, 'The Messenger of Allah ﷺ used to begin the prayer with the <i>takbir</i> and reciting "Praise be to	उलेमा का नमाज़ में दाख़िल होने के लिए इस्तेमाल किए जाने वाले अल्फ़ाज़ के बारे में इख़्तिलाफ़ है। इमाम मालिक़ और उनके अस्थाब, नीज़ उलेमा की एक जमाअत का कहना है कि नमाज़ में दाख़िल होने के लिए सिर्फ़ तकबीर ही काफ़ी है। इस मक़सद के लिए शहादतैन, तस्बीह, अल्लाह की बड़ाई बयान करने के दूसरे अल्फ़ाज़, या हम्द व सना काफ़ी नहीं हैं। यही हिजाज़ के उलेमा और अक्सर इराक़ी उलेमा का मौक़िफ़ है। इमाम मालिक़ के नज़दीक़ सिर्फ़ "अल्लाहु अकबर" कहना काफ़ी है और इसके अलावा कोई और लफ़्ज़ काफ़ी नहीं होगा। यही बात इमाम शाफ़ई के क़ौल के क़रीब है, अलबत्ता इमाम शाफ़ई ने कहा है कि "अल्लाहु अकबर" और "अल्लाहुल-कबीर" दोनों अल्फ़ाज़

Allah, the Lord of the Worlds”,’ the hadith of ‘Ali, ‘His <i>tahrim</i> was the <i>takbir</i>,’ and the hadith of the Bedouin, ‘he said the <i>takbir</i>.’ According to the <i>Sunan</i> of Ibn Majah, Abu Bakr ibn Abī Shaybah and ‘Ali ibn Muḥammad at-Tanafisi related from Abu Usamah from ‘Abd al-Hamid ibn Ja‘far from Muhammad ibn ‘Amr ibn ‘Ata’ who heard Abu Hamid as-Sa‘idi say, ‘When the Messenger of Allah ﷺ rose for the prayer, he faced the <i>qiblah</i>, raised his hands and said, “<i>Allāhu akbar</i>”.’ This is a clear text and sound hadith specifying the words of the <i>takbir</i>.	काफ़ी हैं। इमाम मालिक० की दलील हज़रत आयशा० की हदीस है, जिन्होंने फ़रमाया: "रसूलुल्लाह ﷺ नमाज़ का आगाज़ तकबीर से और 'अल्हम्दु लिल्लाहि रब्बिल-आलमीन' की क़िराअत से करते थे।" इसी तरह हज़रत अली० की हदीस: "नमाज़ में दाख़िल होना तकबीर के ज़रिये है।" और अराबी (देहाती) वाली हदीस, जिसमें आया है: "आप ﷺ ने उसे हुक्म दिया कि वह तकबीर कहे।" इसी तरह सुनन इब्न माजह में अबू बक्र बिन अबी शैबह और अली बिन मुहम्मद अत-तनाफ़सी ने अबू उसामा से, उन्होंने अब्दुल हमीद बिन जाफ़र से, उन्होंने मुहम्मद बिन अम्र बिन अता से, और उन्होंने अबू हमीद अस-साइदी० से रिवायत किया है कि: "जब रसूलुल्लाह ﷺ नमाज़ के लिए खड़े होते तो क़िबला रुख़ होते, अपने हाथ उठाते और फ़रमाते: 'अल्लाहु अकबर'।" यह एक वाज़ेह नस और सहीह हदीस है, जो तकबीर-ए-तहरीमा के अल्फ़ाज़ को मुतअय्यन करती है।
Abu Hanifah said, ‘If someone begins the prayer with “<i>la ilaha illa llah</i>”, it does not satisfy the requirement. If he says, “O Allah, forgive me,”	इमाम अबू हनीफ़ा० ने फ़रमाया: "अगर कोई शख्स नमाज़ की इब्तिदा 'ला इलाहा इल्लल्लाह' से करे तो यह काफ़ी नहीं होगा। और अगर वह 'अल्लाहुम्मा

that does not satisfy it.' That is what Muhammad ibn al-Hasan said. Abu Yusuf said that it does not satisfy it when he can articulate the *takbir* well. Al-Hakam ibn 'Uyaynah said that the requirement is satisfied if he mentions Allah in place of the *takbir*. Ibn al-Mundhir said, "I do not know of any disagreement between them that if someone can recite well and says the *shahadah* and *takbir* but does not recite, his prayer is unsound. If someone holds this position, then he is obliged to say that nothing else satisfies the *takbir* just as nothing else can satisfy recitation. Abu Hanifah said, 'The requirement is satisfied by saying "Allah is greater" in Persian, even if someone speaks Arabic well.' Ibn al-Mundhir said, 'It does not satisfy it because it is different to what the groups of Muslims believe and differs from what the Prophet ﷺ taught his community. We do not know of anyone who agrees with

इफ़िर ली' (ऐ अल्लाह! मुझे बख़्श दे) कहे तो भी यह काफ़ी नहीं होगा।" यही बात इमाम मुहम्मद बिन हसन ने भी कही है। इमाम अबू यूसुफ़ ने फ़रमाया कि जब कोई शख्स तकबीर को सही तौर पर अदा करने की कुदरत रखता हो तो इस सूरत में मज़क़ूरा अल्फ़ाज़ काफ़ी नहीं होंगे। हक़म बिन उयैनह ने कहा कि अगर कोई शख्स तकबीर की जगह अल्लाह का ज़िक्र कर ले तो यह काफ़ी है। इब्न अल-मुन्ज़िर ने कहा: "मैं उन उलेमा के दरमियान किसी इख़्तिलाफ़ को नहीं जानता कि अगर कोई शख्स अच्छी तरह क़िराअत कर सकता हो, फिर वह शहादत और तकबीर कह ले लेकिन क़िराअत न करे, तो उसकी नमाज़ दुरुस्त नहीं होगी।" फिर उन्होंने कहा: "जो शख्स इस मौक़िफ़ को इख़्तियार करता है, उस पर लाज़िम आता है कि वह यह भी कहे कि तकबीर की जगह कोई दूसरी चीज़ काफ़ी नहीं हो सकती, जिस तरह क़िराअत की जगह भी कोई दूसरी चीज़ काफ़ी नहीं हो सकती।" इमाम अबू हनीफ़ा ने यह भी फ़रमाया: "अगर कोई शख्स फ़ारसी ज़बान में 'अल्लाह सबसे बड़ा है' कह दे तो यह काफ़ी है, अगरचे वह अरबी अच्छी तरह बोल सकता हो।" इब्न अल-मुन्ज़िर ने इस

what he said.' Allah knows best.	पर तब्सिरा करते हुए कहा: "यह काफ़ी नहीं है, क्योंकि यह मुसलमानों की जमाअतों के मारूफ़ अमल के खिलाफ़ है और उस तालीम के भी खिलाफ़ है जो नबी करीम ﷺ ने अपनी उम्मत को दी थी। हमें किसी ऐसे आलिम का इल्म नहीं जो इस क़ौल में उनकी मुवाफ़िक़त करता हो।" और अल्लाह तआला ही बेहतर जानता है।
The community agree that the intention is obligatory at the time of the <i>takbir al-ihram</i> except for something related from some of our people who discuss it in the <i>Ayah</i> of Purification. Its reality is to intend to approach the business by doing what is commanded in the recommended manner. Ibn al-‘Arabi said, ‘The basis for every intention is to formulate it in direct proximity with the intended action, or before that, provided that it accompanies that action. If the intention is made earlier and then the person concerned becomes heedless of it and starts the act of worship in that state, it is not counted when he	उम्मत का इस बात पर इत्तिफ़ाक़ है कि तकबीर-ए-तहरीमा के वक़्त नियत करना वाजिब है, सिवाय एक ऐसे क़ौल के जो हमारे कुछ उलेमा से मनकूल है और जिसका तअल्लुक़ आयत-ए-तहारत की बहस से है। नियत की हक़ीक़त यह है कि इंसान किसी अमल को इस नियत से अंजाम देने का इरादा करे कि वह अल्लाह तआला के हुक्म की तामील मतलूबा तरीक़े के मुताबिक़ कर रहा है। इब्न अल-अरबी ने फ़रमाया: "हर नियत का बुनियादी उसूल यह है कि उसे मक़सूद अमल के बिलकुल क़रीब या उसके साथ मुत्तसिल किया जाए, या उससे कुछ पहले किया जाए बशर्ते कि वह नियत अमल के साथ बरक़रार रहे। अगर नियत पहले कर ली जाए, फिर आदमी उससे गाफ़िल हो जाए और उसी ग़फ़लत की हालत में

makes it after starting the action. There is an allowance for putting it earlier in the case of fasting because of the great need for it to be connected to its beginning.'	इबादत शुरू कर दे, तो बाद में उस नियत का एतिबार नहीं होगा जब वह अमल शुरू कर चुका हो। अलबत्ता रोज़े के मामले में इससे पहले नियत कर लेने की इजाज़त दी गई है, क्योंकि उसकी इब्तिदा के साथ नियत को मुत्तसिल रखना दुश्वार होता है, और उसकी ज़रूरत भी ज़्यादा है।"
Ibn al-‘Arabi said, ‘Abu-l-Hasan al-Qarawi told us at the port of ‘Asqalan that he heard the Imam of the two Harams say, ‘A man should make the intention when beginning the prayer and remove his thought from the Maker, the Knower and Prophethoods so that he considers only the intention of the prayer.’ He said that it does not require a long time. That can be in an instant because teaching a camel takes a long time but remembering it can be in an instant. An element of having a full intention is for it to continue right through the whole prayer. However, since that is extremely difficult for a person, the Shafi‘i allows for the intention to slip during the	इब्न अल-अरबी ने फ़रमाया: "अबुल-हसन अल-करावी ने हमें अस्कलान की बंदरगाह में बताया कि उन्होंने इमामुल-हरमैन को यह कहते हुए सुना: 'आदमी को नमाज़ शुरू करते वक़्त नियत करनी चाहिए और अपने ज़ेहन को ख़ालिक़, आलिम-ए-ग़ैब और नुबुव्वतों के बारे में ग़ौर व फ़िक्र से हटा लेना चाहिए, ताकि उसकी तवज्जोह सिर्फ़ नमाज़ की नियत पर मर्कूज़ रहे।' उन्होंने कहा कि इसके लिए ज़्यादा वक़्त दरकार नहीं होता। यह एक लम्हे में भी हासिल हो सकता है, क्योंकि ऊँट को सिखाने में तो बहुत वक़्त लगता है, लेकिन उसकी याद एक लम्हे में आ सकती है। कामिल नियत का एक तकाज़ा यह भी है कि वह पूरी नमाज़ के दौरान बरकरार रहे। लेकिन चूँकि यह इंसान के लिए निहायत दुश्वार है, इसलिए इमाम शाफ़ई ने नमाज़ के

prayer. He said, 'I heard our Shaykh Abu Bakr al-Fihri say in Jerusalem that Muhammad ibn Sahnun said, "I sometimes saw my father Sahnun finish the prayer and then repeat it. I asked him about that and said, 'I lost my intention during it. That is why I repeated it.'"	दौरान नियत से ग़फ़लत वाक़े हो जाने की गुंजाइश दी है। इब्र अल-अरबी ने मज़ीद कहा: 'मैंने अपने शैख़ अबू बक्र अल-फ़िहरी को बैतुल-मक़्दिस में यह कहते हुए सुना कि मुहम्मद बिन सहनून ने कहा: "मैं कभी-कभी अपने वालिद सहनून को नमाज़ मुकम्मल करने के बाद उसे दोबारा पढ़ते हुए देखता था। मैंने उनसे इसके बारे में पूछा तो उन्होंने फ़रमाया: 'नमाज़ के दौरान मेरी नियत में ख़लल आ गया था, इसी लिए मैंने नमाज़ दोबारा पढ़ी।'
These are some of the rulings of the prayer. All its rulings will come in their proper place in this book by Allah's strength. We will mention <i>ruku'</i>, the group prayer, <i>qiblah</i>, doing it early in the time and something about the Fear Prayer in this <i>surah</i>. Shortening the prayer and the Fear Prayer proper will be mentioned in <i>an-Nisa'</i>, the times in <i>Hud</i>, <i>al-Isra'</i> and <i>ar-Rum</i>, the night prayers in <i>al-Muzzammil</i>, the prostration of the recitation in <i>al-A'raf</i>, and the prostration of thankfulness	यह नमाज़ के कुछ अहकाम हैं। इस किताब में, अल्लाह तआला की तौफ़ीक़ और मदद से, नमाज़ के तमाम अहकाम अपने मुनासिब मक़ामात पर बयान किए जाएँगे। इस सूरत में हम रुकूअ, जमाअत के साथ नमाज़, क़िबला, नमाज़ को उसके इब्तिदाई वक़्त में अदा करना, और नमाज़-ए-ख़ौफ़ से मुतअल्लिक़ कुछ मसाइल का ज़िक़्र करेंगे। क़स्र नमाज़ और नमाज़-ए-ख़ौफ़ की तफ़सीली बहस सूरह निसा में बयान की जाएगी। नमाज़ के औक्रात का बयान सूरह हूद, सूरह इस्रा और सूरह रूम में आएगा। क़ियामुल-लैल (रात की नमाज़) का ज़िक़्र सूरह मुज़म्मिल में होगा। सज्दा-ए-तिलावत

in <i>Ṣād</i>, each in its proper place, Allah willing.	का बयान सूरह अअराफ़ में आएगा। और सज्दा-ए-शुक्र का ज़िक्र सूरह साद में किया जाएगा। यह तमाम मसाइल अपने-अपने मुनासिब मक़ामात पर, इंशा अल्लाह, तफ़्सील के साथ बयान किए जाएँगे।
and spend from what We have provided for them;	और जो कुछ हमने उन्हें अता किया है, उस में से खर्च करते हैं।
The word ‘provided’ means ‘given to’. Provision, according to the people who follow the Sunnah, refers to everything which can be used, <i>ḥarām</i> or <i>ḥalāl</i>, as opposed to the Mu‘tazilites who say that the <i>ḥarām</i> is not provision because it is not valid for a person to own it. According to them Allah does not ‘provide’ the <i>ḥarām</i>; He only ‘provides’ the <i>ḥalāl</i>; only something which is validly owned can properly be called provision. So, according to them, if a child grows up with thieves and only eats what the thieves eat until he is adult and strong and then himself becomes a thief and remains a thief and eats what he steals	लफ़ज़ "रिज़क़ दिया" का मअनी है: "अता किया" या "फ़राहम किया"। अहल-ए-सुन्नत के नज़दीक रिज़क़ हर उस चीज़ को शामिल है जिससे इंसान फ़ायदा उठाए, ख़्वाह वह हलाल हो या हराम। इसके बरअक्स मु‘तज़िला का कहना है कि हराम चीज़ रिज़क़ नहीं कहलाती, क्योंकि उसका मालिक बनना शरअन दुरुस्त नहीं होता। उनके नज़दीक अल्लाह तआला हराम चीज़ को रिज़क़ नहीं देता, बल्कि सिर्फ़ हलाल चीज़ ही रिज़क़ होती है, क्योंकि उनके मुताबिक़ सिर्फ़ वही चीज़ रिज़क़ कहलाती है जिसकी मिल्कियत सहीह और जायज़ हो। लिहाज़ा उनके नज़रिये के मुताबिक़ अगर कोई बच्चा चोरों के दरमियान परवान चढ़े, और बुलूग़ात तक सिर्फ़ वही चीज़ें खाता रहे जो चोर खाते हैं, फिर ख़ुद भी चोर बन जाए और सारी ज़िंदगी चोरी का माल खाता रहे,

until he dies, Allah has not provided him with anything, since everything he ever consumed was <i>ḥarām</i> and he did not validly own it. He dies, therefore, without having consumed any of Allah's provision. This is false and the evidence for it is that, if provision had meant legally valid ownership, it would mean that no child could receive provision, nor could any animal which grazes in the wilderness, nor could a lamb because its mother's milk belongs to its owner and not to the lamb!	यहाँ तक कि उसी हाल में मर जाए, तो अल्लाह तआला ने उसे कभी कोई रिज़क़ नहीं दिया, क्योंकि उसने जो कुछ भी खाया वह हराम था और उसकी जायज़ मिलिकियत में नहीं था। पस उनके क़ौल के मुताबिक़ वह शख्स इस हाल में मरेगा कि उसने अल्लाह के रिज़क़ में से कुछ भी नहीं खाया होगा। मुसन्निफ़ कहते हैं कि यह बात बातिल है, और इसकी दलील यह है कि अगर रिज़क़ का मअनी सिर्फ़ जायज़ मिलिकियत होता, तो फिर कोई बच्चा रिज़क़ हासिल नहीं कर सकता था, न ही जंगल में चरने वाले जानवर रिज़क़ पाते, और न ही एक भेड़ का बच्चा, क्योंकि उसकी माँ का दूध तो उसके मालिक की मिलिकियत होता है, न कि खुद उस भेड़ के बच्चे की! लिहाज़ा यह बात वाज़ेह होती है कि रिज़क़ का मफ़हूम सिर्फ़ जायज़ मिलिकियत तक महदूद नहीं, बल्कि हर वह चीज़ जिससे मख़लूक फ़ायदा उठाती है, अल्लाह तआला के दिए हुए रिज़क़ में शामिल है।
The Community agree that children, lambs and beasts are provided for and that Allah Almighty provides for them, even though they are not the owners of anything, because it	उम्मत का इस बात पर इत्तिफ़ाक़ है कि बच्चे, भेड़ के बच्चे और जानवर रिज़क़ दिए जाते हैं, और अल्लाह तआला ही उन्हें रिज़क़ अता करता है, हालाँकि वह किसी चीज़ के मालिक नहीं होते। इस

is known that nourishment is an aspect of provision. The Community also agree that slaves are provided for and that Allah Almighty provides for them although they are not owners. So it is clear that provision is what we have said, not what the Mu'tazilites say.	की वजह यह है कि यह बात मालूम व मुसल्लम है कि गिज़ा और परवरिश रिज़क ही की एक किस्म हैं। इसी तरह उम्मत का इस बात पर भी इत्तिफ़ाक़ है कि गुलामों को रिज़क दिया जाता है और अल्लाह तआला ही उन्हें रिज़क अता करता है, हालाँकि वह भी किसी चीज़ के मालिक नहीं होते। लिहाज़ा वाज़ेह हो गया कि रिज़क का मफ़हूम वही है जो हमने बयान किया है, न कि वह जो मु'तज़िला बयान करते हैं।
All nourishment is provision and there is no provider except Allah: <i>'Is there any creator other than Allah providing for you from what is in heaven and the earth?'</i> (35:3) He says: <i>'Allah is the Provider, the Possessor of Strength, the Sure.'</i> He says: <i>'There is no creature on the earth which is not dependent upon Allah for its provision.'</i> This is definitive. Allah Almighty is the true Provider in every instance. The son of Adam is a mere recipient because his ownership of property is, in fact, only metaphorical as we have made clear in our	हर किस्म की गिज़ा और ख़ुराक रिज़क है, और अल्लाह तआला के सिवा कोई रिज़क देने वाला नहीं। अल्लाह तआला फ़रमाता है: "क्या अल्लाह के सिवा कोई और ख़ालिक है जो तुम्हें आसमान और ज़मीन से रिज़क देता हो?" और फ़रमाता है: "बेशक अल्लाह ही रिज़क देने वाला, कुव्वत वाला और निहायत मज़बूत है।" और फ़रमाता है: "ज़मीन में चलने वाला कोई जानदार ऐसा नहीं जिसका रिज़क अल्लाह के ज़िम्मे न हो।" ये नुसूस क़तई और फ़ैसला-कुन हैं। हर हाल में हक़ीक़ी रिज़क देने वाला अल्लाह तआला ही है। इंसान महज़ रिज़क हासिल करने वाला है, क्योंकि उसकी मिल्कियत दरहक़ीक़त हक़ीक़ी मिल्कियत नहीं बल्कि मजाज़ी

commentary on the <i>Fātiḥah</i>. He is provided for, like the animals, which truly own nothing. If the thing is something he is permitted to obtain, it is <i>ḥalāl</i> for him, and if it is not permitted, then it is <i>ḥarām</i> for him, but nevertheless all of it is provision. One great man of knowledge explained the words of Allah, '<i>Eat of your Lord's provision and give thanks to Him, a bountiful land and a forgiving Lord</i>' by saying the adjective 'forgiving' (<i>ghafūr</i>) used in it indicates that provision may contain what is unlawful.	मिल्कियत है, जैसा कि हम सूरह फ़ातिहा की तफ़्सीर में वाज़ेह कर चुके हैं। इंसान भी रिज़क़ दिया जाता है, बिल्कुल उसी तरह जैसे जानवरों को रिज़क़ दिया जाता है, हालाँकि वह हक़ीक़तन किसी चीज़ के मालिक नहीं होते। अगर कोई चीज़ ऐसी हो जिसे हासिल करना उसके लिए जायज़ हो तो वह उसके हक़ में हलाल है, और अगर उसे हासिल करना जायज़ न हो तो वह हराम है, लेकिन दोनों सूरतों में वह रिज़क़ ही शुमार होगी। एक बड़े आलिम ने अल्लाह तआला के इस फ़रमान की तफ़्सीर में: "अपने रब के रिज़क़ में से खाओ और उसका शुक्र अदा करो। यह एक उम्दा शहर है और रब बड़ा बख़्शने वाला है।" यह फ़रमाया कि इस आयत में "बख़्शने वाला" (ग़फ़ूर) की सिफ़त का ज़िक़र इस बात की तरफ़ इशारा करता है कि रिज़क़ में कुछ ऐसी चीज़ें भी शामिल हो सकती हैं जो नाजायज़ या हराम हों, क्योंकि मग़फ़िरत का ज़िक़र गुनाह और तक़सीर के इमकान के साथ मुनासबत रखता है।
<i>Rizq</i> is a verbal noun derived from the verb <i>razaqa</i>. <i>Razq</i> is the verbal noun and <i>rizq</i> is a noun whose plural is <i>arzāq</i>.	रिज़क़ लफ़ज़ "रज़क़" से माखूज़ है। रज़क़ (बफ़्तह अर-रा और सुकून अज़-ज़ाय) मसदर है, जबकि रिज़क़ इस्म है,

<i>Razq</i> is giving.	और इसकी जमा अरज़ाक़ आती है। रज़क़ का मअनी है: देना, अता करना या बरख़शना।
<i>Rāziqiyyah</i> is a cotton garment. It is used for an army taking its provisions. <i>Razqah</i> is a single time. Ibn as-Sakīt said that <i>rizq</i> means thankfulness in the dialect of Arzdishanu'ah as in where it means 'thanks'.	राज़िक़िय्यह एक किस्म का सूती (रूई का बना हुआ) लिबास है। फ़ेअल बाब-ए-इप्तिआल में "इर्तज़क़" उस वक़्त बोला जाता है जब कोई लश्कर या फ़ौज अपना रिज़क़ व सामान-ए-रसद हासिल करे। रज़क़ह एक मर्तबा रिज़क़ देने या एक बार के अतिये के मअनी में आता है। इब्न अस-सकीत ने कहा है कि "रिज़क़" का मअनी क़बीला अज़द-ए-शनूअह की बोली में "शुक़" भी होता है। इसी मअनी के एतिबार से सूरह वाकिआ की आयत में: में "रिज़क़" से मुराद "शुक़" लिया गया है, यानी: "और तुम अपनी नाशुक़ी (या शुक़ के बजाय) यह क़रार देते हो कि तुम झुठलाते हो।"
The word for 'those who spend' (<i>yunfiqūn</i>) means 'to bring something out'. 'Spending' is to give out money with the hand. The verb <i>nafaqa</i>, with regard to a sale, means to transfer money from the hand of the seller to the hand of the buyer. <i>Nafaqa</i> is used for an animal when its life leaves it. From the same root	लफ़ज़ "युनफ़िकून्" (खर्च करते हैं) का अस्ल मअनी है "किसी चीज़ को बाहर निकालना"। इन्फ़ाक़ से मुराद हाथ के ज़रिये माल को निकाल कर खर्च करना या दूसरों को देना है। फ़ेअल "नफ़क़" ख़रीद व फ़रोख़्त के मामले में उस वक़्त बोला जाता है जब माल बेचने वाले के हाथ से निकल कर ख़रीदार के हाथ में मुन्तक़िल हो जाए। इसी तरह "नफ़क़तिद-दाब्बह" उस वक़्त कहा

comes <i>nāfiqā</i>, the second entrance of the hole of the jerboa from which it emerges when it is attacked from the other entrance. We also have the word <i>munāfiq</i> (hypocrite), so called because he leaves belief or belief leaves his heart. <i>Nifāq</i> is used for trousers because the legs emerge from them. <i>Nafaqa</i> is also used for something which is spent, used up or comes to an end. An example of that usage is in the words of Allah: <i>'You would still hold back out of the fear it would run out (infāq).'</i>	जाता है जब किसी जानवर की जान निकल जाए। इसी माद्दे से "नाफ़िक्का" का लफ़्ज़ भी निकला है, जो सहराई चूहे (यरबूअ) के बिल के दूसरे सुराख को कहते हैं, जहाँ से वह उस वक़्त निकल भागता है जब उस पर पहले सुराख से हमला किया जाए। इसी माद्दे से "मुनाफ़िक्क" (मुनाफ़िक्क) का लफ़्ज़ भी है, जिसे यह नाम इसलिए दिया गया है कि या तो वह ईमान से निकल जाता है, या ईमान उसके दिल से निकल जाता है। "निफ़ाक्क" का लफ़्ज़ पाजामे या शलवार के लिए भी इस्तेमाल होता है, क्योंकि उसमें से टाँगें बाहर निकलती हैं। इसी तरह "नफ़ाक्क" किसी ऐसी चीज़ के लिए भी बोला जाता है जो ख़र्च हो जाए, ख़त्म हो जाए या फ़ना हो जाए। इस इस्तेमाल की मिसाल अल्लाह तआला के इस फ़रमान में है: "तब भी तुम ख़र्च हो जाने (या ख़त्म हो जाने) के ख़ौफ़ से उसे रोक कर रखते।" यानी तुम इस अंदेशे से ख़र्च न करते कि कहीं वह माल ख़त्म न हो जाए।
Scholars disagree about what is meant by the giving of provision in this instance. It is said that it refers to obligatory <i>zakāt</i>. That is related from Ibn 'Abbās and is because the	उलेमा का इस बारे में इख़्तिलाफ़ है कि इस आयत में "और जो कुछ हमने उन्हें दिया है उसमें से ख़र्च करते हैं" से क्या मुराद है। एक क़ौल यह है कि इससे फ़र्ज़ ज़कात मुराद है। यह तफ़्सीर इब्न

prayer accompanies it. It is said that it refers to what a man spends on his family. That is related from Ibn Mas'ūd because that is the best type of expenditure. Muslim related from Abū Hurayrah that the Messenger of Allah ﷺ said, 'Out of a dinar which you spend in the way of Allah and a dinar which you spend on freeing a slave and a dinar which you give to a poor person and a dinar which you spend on your family, the one with the greatest reward is the one which you spend on your family.' It is related from Thawban that the Messenger of Allah ﷺ said, 'Is not the best dinar a man spends the dinar which he spends on his family and the dinar which he spends on his mount in the way of Allah and the dinar which he spends on his companions in the way of Allah?' Abū Qilābah said, 'He began with the family,' and then he continued, 'What man could have a greater reward' than

अब्बासुँ से मनकूल है, और इसकी वजह यह बयान की गई है कि आयत में ज़कात का ज़िक्र नमाज़ के साथ आया है। एक दूसरा क़ौल यह है कि इससे मुराद वह खर्च है जो आदमी अपने अहल व अयाल पर करता है। यह तफ़्सीर इब्न मसऊदुँ से मनकूल है, क्योंकि अहल व अयाल पर खर्च करना खर्च की बेहतरीन सूरतों में से है। इमाम मुस्लिमुँ ने हज़रत अबू हुरैरहूँ से रिवायत किया है कि रसूलुल्लाह ﷺ ने फ़रमाया: "एक दीनार जो तुम अल्लाह की राह में खर्च करो, एक दीनार जो किसी गुलाम को आज़ाद करने में खर्च करो, एक दीनार जो किसी मिस्कीन को दो, और एक दीनार जो अपने अहल व अयाल पर खर्च करो, इन सब में सबसे ज़्यादा अज़्र वाला वह दीनार है जो तुम अपने अहल व अयाल पर खर्च करते हो।" हज़रत सौबानुँ से रिवायत है कि रसूलुल्लाह ﷺ ने फ़रमाया: "क्या सबसे अफ़ज़ल दीनार वह नहीं जो आदमी अपने अहल व अयाल पर खर्च करे, और वह दीनार जो अल्लाह की राह में अपनी सवारी पर खर्च करे, और वह दीनार जो अल्लाह की राह में अपने साथियों पर खर्च करे?" अबू क़िलाबहूँ ने कहा: "आप ﷺ ने सबसे पहले अहल व अयाल का ज़िक्र किया।" फिर उन्होंने

someone who spends on a young family to keep them virtuous, or Allah gives them the benefit of him and he enriches them?’	फ़रमाया: "उस शख्स से बढ़कर अन्न वाला कौन हो सकता है जो अपने छोटे अहल व अयाल पर खर्च करता है ताकि उन्हें पाकदामन रखे, या अल्लाह तआला उनको उसके ज़रिये फ़ायदा पहुँचाए और उन्हें दूसरों से बेनियाज़ कर दे?"
It is also said that what is meant here is voluntary <i>ṣadaqah</i>. That is related from ad-Ḍaḥḥāk in reference to the fact that obligatory <i>zakāt</i> is only referred to with the expression particular to it, which is the word <i>zakāt</i>. When a word other than <i>zakāt</i> is used, it may be obligatory or voluntary. When the word ‘spend’ is used, it is only voluntary. Ad-Ḍaḥḥāk said, ‘Spending was, at first, a kind of sacrifice by which a person drew near to Allah Almighty according to his effort in it until Allah revealed the obligations of <i>zakāt</i> in <i>Sūrat at-Tawbah</i> which abrogated that.’ It is said that it refers to obligatory rights on wealth other than <i>zakāt</i> because by	यह भी कहा गया है कि यहाँ इन्फ़ाक़ से मुराद नफ़ली सदक़ा है। यह तफ़सीर ज़हहाक़ से मनकूल है। उनका इस्तिदलाल यह है कि फ़र्ज़ ज़कात का ज़िक्र सिर्फ़ उसके मखसूस लफ़्ज़ "ज़कात" के साथ किया जाता है। जब ज़कात के अलावा कोई और लफ़्ज़ इस्तेमाल किया जाए तो वह कभी वाजिब खर्च पर भी दलालत कर सकता है और कभी नफ़ली खर्च पर भी। अलबत्ता जब "इन्फ़ाक़" (खर्च करना) का लफ़्ज़ इस्तेमाल हो तो उससे मुराद नफ़ली खर्च लिया जाता है। ज़हहाक़ ने कहा: "इब्तिदा में इन्फ़ाक़ एक ऐसी कुर्बानी और इबादत थी जिसके ज़रिये आदमी अपनी कोशिश और इस्तिताअत के मुताबिक़ अल्लाह तआला का कुर्ब हासिल करता था, यहाँ तक कि अल्लाह तआला ने सूरह तौबह में ज़कात के फ़राइज़ नाज़िल फ़रमाए, जिन्होंने उस साबिक़ हुक्म को मंसूख़

connecting it to the prayer, Allah Almighty is indicating that they are obligatory, and the fact that He uses another expression shows that this is an obligation other than <i>zakāt</i>.	कर दिया।" यह भी कहा गया है कि इससे मुराद माल के वह वाजिब हुक्क हैं जो ज़कात के अलावा हैं। इसकी दलील यह है कि अल्लाह तआला ने उसे नमाज़ के साथ ज़िक्र किया है, और नमाज़ के साथ उसका ज़िक्र इस बात की तरफ़ इशारा करता है कि यह भी वाजिब है। मज़ीद यह कि ज़कात का मखसूस लफ़्ज़ इस्तेमाल करने के बजाय दूसरा लफ़्ज़ लाना इस बात की दलील है कि यहाँ ज़कात के अलावा किसी और वाजिब माली हक़ का ज़िक्र मकसूद है।
It is said that its meaning is general and that is a sound position because Allah praises all kinds of spending out from what we are provided with. In that case the meaning is that they pay the <i>zakāt</i> obliged by the Sharī'ah and also spend in other ways in which it is recommended for them to spend. It is said that '<i>believe in the Unseen</i>' is the portion of the heart, '<i>establish the prayer</i>' is the portion of the body and '<i>spend from what they are provided with</i>' is the portion of	यह भी कहा गया है कि इस आयत का मफ़हूम आम है, और यही क़ौल ज़्यादा दुरुस्त मालूम होता है, क्योंकि अल्लाह तआला ने अपने दिए हुए रिज़क़ में से हर क्रिस्म के ख़र्च की तारीफ़ फ़रमाई है। इस बिना पर आयत का मतलब यह होगा कि वह लोग शरीअत की तरफ़ से फ़र्ज़ की गई ज़कात भी अदा करते हैं और उन दूसरे रास्तों में भी ख़र्च करते हैं जिनमें ख़र्च करना उनके लिए मुस्तहब और पसंदीदा क़रार दिया गया है। यह भी कहा गया है कि: "ग़ैब पर ईमान लाते हैं" दिल का हिस्सा है। "नमाज़ क़ायम करते हैं" जिस्म का हिस्सा है। "और जो कुछ हमने उन्हें

wealth. This is evident. Some early scholars said in their interpretation of the words of Allah Almighty: <i>'they spend from what We have provided them,'</i> that they refer to people teaching others some of what Allah has taught them. Abū Naṣr 'Abd ar-Raḥīm ibn 'Abd al-Karīm al-Qushayrī related that.	दिया है उसमें से खर्च करते हैं" माल का हिस्सा है। यह मफ़हूम बिलकुल वाज़ेह है। कुछ सलफ़ सालेहीन ने अल्लाह तआला के इस फ़रमान: "और जो कुछ हमने उन्हें अता किया है उसमें से खर्च करते हैं" की तफ़सीर में कहा है कि इससे मुराद यह भी है कि लोग अल्लाह तआला के दिए हुए इल्म में से कुछ दूसरों को सिखाएँ। अबू नस्र अब्दुरहीम बिन अब्दुल करीम अल-कुशैरी ने यह क़ौल नक़ल किया है।
those who believe in what has been sent down to you and what was sent down before you, and are certain about the Next World. [2:4]	और जो उस (किताब) पर ईमान लाते हैं जो आपकी तरफ़ नाज़िल की गई है, और उस पर भी जो आपसे पहले नाज़िल की गई थी, और वह आख़िरत पर यक़ीन रखते हैं। (2:4)
It is said that what is meant here are believers from the People of the Book, such as 'Abdullāh ibn Sallām, and that it was revealed about him. The previous <i>āyah</i> was revealed about believers among the Arabs. It is also said that both this <i>āyah</i> and the previous one are about believers in general.	यह भी कहा गया है कि इस आयत से मुराद अहल-ए-किताब में से वह लोग हैं जो ईमान ले आए थे, जैसे अब्दुल्लाह बिन सलाम, और यह आयत उन्हीं के बारे में नाज़िल हुई थी। जबकि इससे पहली आयत अरबों में से ईमान लाने वाले मोमिनीन के बारे में नाज़िल हुई थी। यह भी कहा गया है कि यह आयत और इससे पहले वाली आयत, दोनों तमाम मोमिनीन के बारे में आम हैं और किसी खास ग़िरोह के साथ मख़सूस

	नहीं हैं।
Allah's words ' <i>what has been sent down to you,</i> ' refer to the Qur'an and His words ' <i>and what was sent down before you</i> ' refer to previous Books, so this differs from what the Jews and Christians did, since they only believed in their own Books as Allah tells us later in this <i>sūrah</i> : ' <i>When they are told, "Believe in what Allah has sent down," they say, "We believe in what was sent down to us."</i>	अल्लाह तआला के इस फ़रमान: "जो आपकी तरफ़ नाज़िल किया गया है" से मुराद कुरआन-ए-मजीद है। और उसके फ़रमान: "और जो आपसे पहले नाज़िल किया गया था" से मुराद पहली आसमानी किताबें हैं। पस मोमिनीन का यह वस्फ़ यहूद व नसारा के तर्ज़-ए-अमल से मुख़्तलिफ़ है, क्योंकि वह सिर्फ़ अपनी-अपनी किताबों पर ईमान रखते थे। जैसा कि अल्लाह तआला ने इसी सूरात में बाद में फ़रमाया: "और जब उनसे कहा जाता है कि उस चीज़ पर ईमान लाओ जो अल्लाह ने नाज़िल की है, तो वह कहते हैं: 'हम तो सिर्फ़ उस पर ईमान रखते हैं जो हमारी तरफ़ नाज़िल किया गया है।'" लिहाज़ा कामिल ईमान यह है कि इंसान कुरआन-ए-मजीद पर भी ईमान लाए और उन तमाम साबिक़ा आसमानी किताबों पर भी जिन्हें अल्लाह तआला ने अपने अम्बिया अलैहिमुस्सलाम पर नाज़िल फ़रमाया था।
It is said that when this <i>āyah</i> was revealed and the words ' <i>those who believe in the Unseen</i> ' came, the Jews and Christians said, 'We believe in	यह भी कहा गया है कि जब यह आयत नाज़िल हुई और अल्लाह तआला ने फ़रमाया: "जो ग़ैब पर ईमान लाते हैं" तो यहूद व नसारा ने कहा: "हम भी ग़ैब पर ईमान रखते हैं।" फिर जब अल्लाह

the Unseen.’ When Allah said: <i>‘establish the prayer’</i> , they said, <i>‘We establish the prayer.’</i> When He said: <i>‘and spend from what We have provided for them,’</i> they said, <i>‘We spend and give alms.’</i> When He said: <i>‘those who believe in what has been sent down to you and what was sent down before you,’</i> they were averse to that. We find in a hadith that Abū Dharr asked, ‘Messenger of Allah, how many Books have been sent down?’ He answered, ‘One hundred and four Books. Allah sent down fifty scrolls to Seth, thirty scrolls to Enoch, ten scrolls to Ibrāhīm, and ten scrolls to Mūsā before the Torah, and He sent down the Torah, the Gospel, the Zabūr and the Furqān.’ Al-Ḥusayn al-Ujurrī and Abū Ḥātim al-Bustī transmitted it.	तआला ने फ़रमाया: "और नमाज़ क़ायम करते हैं" तो उन्होंने कहा: "हम भी नमाज़ क़ायम करते हैं।" और जब अल्लाह तआला ने फ़रमाया: "और जो कुछ हमने उन्हें दिया है उसमें से ख़र्च करते हैं" तो उन्होंने कहा: "हम भी ख़र्च करते हैं और सदक़ा देते हैं।" लेकिन जब अल्लाह तआला ने फ़रमाया: "और जो उस (किताब) पर ईमान लाते हैं जो आपकी तरफ़ नाज़िल की गई है, और उस पर भी जो आपसे पहले नाज़िल की गई थी" तो वह इस बात से गुरेज़ करने लगे और उसे क़बूल न किया। एक हदीस में आता है कि हज़रत अबू ज़र्र ने अर्ज़ किया: "या रसूलल्लाह! कितनी किताबें नाज़िल की गई हैं?" आप ﷺ ने फ़रमाया: "एक सौ चार किताबें। अल्लाह तआला ने हज़रत शीसं पर पचास सहीफ़े नाज़िल फ़रमाए, हज़रत इदरीसं पर तीस सहीफ़े, हज़रत इब्राहीमं पर दस सहीफ़े, और तौरात से पहले हज़रत मूसां पर दस सहीफ़े नाज़िल फ़रमाए। फिर अल्लाह तआला ने तौरात, इंजील, ज़बूर और फ़ुरक़ान (क़ुरआन) नाज़िल फ़रमाया।" इस हदीस को इमाम हुसैन अल-आजुरी और अबू हातिम अल-बुस्ती ने रिवायत किया है।
---	---

There is a question which arises here. How can one believe in all the various Revelations when it is clear that their rulings conflict? Two answers are given. One is that one believes that all of them came from Allah. This is the position of those who abolish all the acts of worship prescribed by prior <i>sharī'ahs</i>. The second is that one believes in those things in them which have not been abrogated. This is the position of those who say it is obligatory to abide by prior <i>sharī'ahs</i>, a judgment which will be explained in the proper place.	यहाँ एक सवाल पैदा होता है: जब यह बात वाज़ेह है कि मुख्तलिफ़ आसमानी किताबों और शरीअतों के कुछ अहकाम एक दूसरे से मुख्तलिफ़ और बज़ाहिर मुतआरिज़ हैं, तो फिर इन तमाम वहियों और नाज़िलशुदा किताबों पर ईमान कैसे लाया जा सकता है? इसके दो जवाब दिए गए हैं: पहला जवाब: यह है कि इंसान इस बात पर ईमान रखे कि यह तमाम किताबें और वही अल्लाह तआला ही की तरफ़ से नाज़िल हुई हैं। यह उन उलेमा का मौक़िफ़ है जो साबिक़ा शरीअतों के तमाम इबादती अहकाम को मंसूख़ करार देते हैं और उन्हें अब क़ाबिल-ए-अमल नहीं समझते। दूसरा जवाब: यह है कि इंसान उन किताबों में मौजूद उन अहकाम और तालीमात पर ईमान रखे जो मंसूख़ नहीं हुए। यह उन उलेमा का मौक़िफ़ है जो इस बात के क़ाइल हैं कि साबिक़ा शरीअतों के कुछ अहकाम पर अमल करना वाजिब रहता है, जब तक उनके मंसूख़ होने की दलील मौजूद न हो। इस मसअले की तफ़सील और इससे मुतअल्लिक़ हुक्म अपने मुनासिब मक़ाम पर बयान किया जाएगा।
and are certain about the Next World	और वह आख़िरत पर यक़ीन रखते हैं।

The words '<i>and are certain about the Next World</i>' refer to the Resurrection after death. Certainty is knowledge free from all doubt. Various forms of this verb (<i>yaqina</i>) can be used to express this idea. Sometimes it is possible for this word to indicate the opposite meaning of 'conjecture', and we find it in this sense elsewhere in the Qur'an and in many poems. <i>Ākhirah</i> (Next World) is derived from <i>ta'akhkhar</i> (delay) because it is later for us, as <i>dunyā</i> (this world) is derived from <i>dunuw</i> (nearness)	अल्लाह तआला के इस फ़रमान: "और वह आखिरत पर यक़ीन रखते हैं" से मुराद मौत के बाद दोबारा ज़िंदा किए जाने (बअ्स बाद अल-मौत) पर यक़ीन रखना है। यक़ीन उस इल्म को कहते हैं जो हर क़िस्म के शक व शुब्हे से पाक हो। अरबी ज़बान में इस मफ़हूम को अदा करने के लिए फ़ेअल "यक़िना" की मुख़लिफ़ सूरतें इस्तेमाल की जाती हैं। बाज़ औक़ात यह लफ़ज़ गुमान और ज़न्न की ज़िद के तौर पर भी इस्तेमाल होता है, और कुरआन-ए-करीम में दीगर मक़ामात पर भी यह इसी मअनी में आया है, नीज़ अरबी शायरी में भी इसके बहुत से शवाहिद मौजूद हैं। लफ़ज़ "आखिरत", "तअख़्खुर" (पीछे या बाद में आने) से माखूज़ है, क्योंकि वह हमारे लिए बाद में आने वाली ज़िंदगी है। इसी तरह लफ़ज़ "दुनिया", "दुनुव्व" (क़रीब होना) से माखूज़ है, क्योंकि यह ज़िंदगी हमारे क़रीब और फ़ौरी तौर पर मौजूद है।
They are the people guided by their Lord. They are the ones who have success. [2:5]	यही लोग अपने रब की तरफ़ से हिदायत पर हैं, और यही लोग फ़लाह पाने वाले हैं। (2:5)
Our scholars say that the words '<i>by their Lord</i>' refute the Qadariyyah who say that they	हमारे उलेमा कहते हैं कि अल्लाह तआला के इस फ़रमान: "अपने रब की तरफ़ से हिदायत पर हैं" में क़दरिय्या के

themselves are the creators of their own faith and their own guidance. Allah is too exalted for their position to be true. If that had been the case, Allah would have said, 'by their own selves'. The meaning of the word 'guidance' (<i>hudā</i>) has already been discussed in the commentary on the second <i>āyah</i> of this <i>sūrah</i>.	मौक्रिफ़ का रद्द है, क्योंकि वह यह कहते हैं कि इंसान खुद अपने ईमान और अपनी हिदायत का ख़ालिक है। अल्लाह तआला उनके इस क़ौल से बहुत बुलंद व बरतर है। अगर उनका यह नज़रिया दुरुस्त होता तो अल्लाह तआला यूँ फ़रमाता: "वह अपनी ज़ातों की तरफ़ से हिदायत पर हैं" न कि: "अपने रब की तरफ़ से हिदायत पर हैं।" रहा लफ़्ज़ "हिदायत" (हुदा) का मअनी, तो इस पर इस सूरात की दूसरी आयत की तफ़्सीर में पहले तफ़्सीली गुफ़्तगू गुज़र चुकी है।
They are the ones who have success.	और यही लोग फ़लाह पाने वाले हैं।
The linguistic root of <i>falāḥ</i> (success) is <i>falah</i>, which has the meaning of splitting or cleaving. From it comes <i>filāḥah</i>, tillage of the earth when it is ploughed for cultivation. Abū 'Ubayd said that. That is why a ploughman is called a <i>fallāḥ</i>. Someone with a split lower lip is called <i>aflah</i>. It is as if the one with success cuts through adversity until he reaches his goal. The word is used for success and	फ़लाह का लुगवी माद्दा "फलह" है, जिसका मअनी चीरना, फाड़ना या शिगाफ़ करना है। इसी माद्दे से "फ़िलाहत" का लफ़्ज़ निकला है, जिससे मुराद ज़मीन को काश्त के लिए हल चला कर चीरना और तैयार करना है। अबू उबैद ने यही मअनी बयान किए हैं। इसी वजह से किसान या हल चलाने वाले शख्स को "फ़ल्लाह" कहा जाता है। इसी माद्दे से "अफ़लह" उस शख्स को भी कहा जाता है जिसका निचला होंठ शिगाफ़ता या कटा हुआ हो। गोया फ़लाह पाने वाला वह शख्स है जो

continuation, which is also another aspect of its linguistic root.	मुश्किलात और रुकावटों को चीरता हुआ अपने मतलूब और मक़सद तक पहुँच जाता है। लफ़ज़ फ़लाह कामयाबी और दाइमी बक्रा के मअनी में भी इस्तेमाल होता है, और यह मअनी भी उसके लुग़वी मादे से मुनासबत रखते हैं।
The meaning of '<i>the ones who have success</i>' in this context is those who win the Garden and remain in it. Ibn Abī Ishāq said, 'Those who are successful are those who attain what they seek and are saved from the evil from which they flee.' The meaning is the same. The word <i>falāḥ</i> is also used for <i>saḥūr</i> (the pre-dawn meal in Ramadan), as in the hadith recorded by Abū Dāwūd: 'Until we almost missed <i>falāḥ</i> with the Messenger of Allah ﷺ.' It was asked, 'What is <i>falāḥ</i>?' The answer was, '<i>Saḥūr</i>.' <i>Falāḥ</i> normally means to gain one's goal and to be delivered from what one fears.	इस संदर्भ में "फ़लाह पाने वाले" से मुराद वे लोग हैं जो जन्नत प्राप्त करेंगे और उसमें हमेशा रहने वाले होंगे। इब्न अबी इस्हाक़ ने कहा: "फ़लाह पाने वाले वे हैं जो अपनी चाही हुई चीज़ को पा लें और उस बुराई से बच जाएँ जिससे वे भागते हैं।" इसका मफ़हूम भी यही है। लफ़ज़ "फ़लाह" का इस्तेमाल सहूर (रमज़ान में सुबह-सादिक़ से पहले खाया जाने वाला भोजन) के लिए भी होता है, जैसा कि अबू दाऊद की रिवायत की हुई हदीस में है: "यहाँ तक कि हम रसूलुल्लाह ﷺ के साथ फ़लाह से लगभग चूक गए।" पूछा गया: "फ़लाह क्या है?" जवाब दिया गया: "सहूर।" आम तौर पर फ़लाह का मअनी है अपने मक़सद और मुराद को पा लेना , और जिस चीज़ से डर हो उससे नजात पा जाना।
As for those who disbelieve, it makes no difference to them	बेशक जिन लोगों ने कुफ़्र किया, उनके लिए बराबर है कि आप उन्हें

whether you warn them or do not warn them they will not believe. [2:6]	खबरदार करें या न करें, वह ईमान नहीं लाएँगे। (2:6)
As for those who disbelieve,	बेशक जिन लोगों ने कुफ़्र किया
After mentioning the believers and their states, Allah then mentions the unbelievers and their end. <i>Kufr</i> (disbelief) is the opposite of <i>īmān</i> (belief) and that is what is meant in this <i>āyah</i>. <i>Kufr</i> can also mean ingratitude for blessings and gifts received. The Prophet ﷺ used it in that way when he spoke about women in the eclipse hadith: ‘Then I saw the Fire – and I have never seen anything more hideous than what I saw today – and I saw that most of its inhabitants were women.’ They asked, ‘Why, Messenger of Allah?’ He replied, ‘For their <i>kufṛ</i>.’ It was asked, ‘Do they reject Allah [or ‘Are they ungrateful to Allah’?].’ He said, ‘They are ungrateful to their husbands, and they are ungrateful for good behaviour (towards them). Even if you were to	मोमिनो और उनके अहवाल का ज़िक्र करने के बाद अल्लाह तआला फिर काफ़िरोँ और उनके अंजाम का ज़िक्र फ़रमाता है। कुफ़्र, ईमान की ज़िद है, और इस आयत में यही मानी मुराद हैं। अलबत्ता कुफ़्र का एक मानी नेमतों और अताओं की नाशुक्री भी है। नबी करीम ﷺ ने इसी मानी में यह लफ़्ज़ उस हदीस में इस्तेमाल फ़रमाया जो सूरज ग्रहण के बारे में वारिद हुई है। आप ﷺ ने फ़रमाया: "फिर मैंने जहन्नम को देखा, और आज के दिन जो कुछ मैंने देखा उससे ज़्यादा हौलनाक मंज़र कभी नहीं देखा, और मैंने देखा कि उसके अक्सर बाशिंदे औरतें हैं।" सहाबाँ ने अर्ज़ किया: "या रसूलल्लाह! ऐसा क्यों?" आप ﷺ ने फ़रमाया: "उनके कुफ़्र की वजह से।" अर्ज़ किया गया: "क्या वह अल्लाह का इनकार करती हैं?" आप ﷺ ने फ़रमाया: "वह अपने शौहरों की नाशुक्री करती हैं और उनके हुस्ने-सुलूक की क़द्र नहीं करतीं। अगर तुम अपनी पूरी ज़िंदगी उनमें से किसी एक के साथ अच्छा बर्ताव करते रहो, फिर

behave well to one of them for a whole lifetime and she were to see you do something (that she did not like) she would say that she had never seen anything good from you.' Al-Bukhārī and others transmitted it.	वह तुमसे कोई ऐसी बात देख ले जो उसे नापसंद हो, तो वह कह उठेगी: 'मैंने तुमसे कभी कोई भलाई नहीं देखी।'" इस हदीस को इमाम बुखारी और दीगर मुहद्दीसीन ने रिवायत किया है।
The root of the verb <i>kafara</i> in Arabic indicates covering and hiding. Part of that usage is found in the words of a poet: In the night its clouds cover (<i>kafara</i>) the stars.	अरबी में कफ़रा के फ़ेल का माद्दा ढाँपने और छुपाने के मानी पर दलालत करता है। इस इस्तेमाल की एक मिसाल एक शायर के इस क़ौल में पाई जाती है: रात के वक़्त उसके बादल सितारों को ढाँप लेते हैं (कफ़रा)।
Night is called <i>kāfir</i> because it covers everything in darkness. <i>Kāfir</i> can also mean a sea or huge river and is also used with the meaning of cultivator – someone who covers seeds with earth. Its plural in that case is <i>kuffār</i> rather than <i>kāfirīn</i>. Allah Almighty says, 'Like the plant-growth after rain which delights the cultivators (<i>kuffār</i>)'. Ashes are called <i>makfūr</i> when the wind has swept the dust so that it has covered them. 'Land which is	रात को काफ़िर कहा जाता है क्योंकि वह अँधेरे के द्वारा हर चीज़ को ढाँप लेती है। काफ़िर का अर्थ समुद्र या बहुत बड़ी नदी भी होता है, और यह खेती करने वाले के अर्थ में भी इस्तेमाल होता है — यानी वह व्यक्ति जो बीजों को मिट्टी से ढाँप देता है। इस अर्थ में इसका बहुवचन कुफ़र आता है, काफ़िरीन नहीं। अल्लाह तआला फ़रमाता है: "उस खेती की तरह जो बारिश के बाद उगती है और किसानों (कुफ़र) को भली लगती है।" राख को मकफूर कहा जाता है जब हवा धूल को इस तरह उड़ा दे कि वह राख को ढाँप ले। "कफ़र" उस

kafr is that which is so far off the beaten track that people almost never stop in it or pass by it. Those who do stop in such places are people of kufūr. It is also said that kufūr means isolated villages.	ज़मीन को कहा जाता है जो आबादी और रास्तों से इतनी दूर हो कि लोग वहाँ बहुत कम ठहरते हों या वहाँ से गुज़रते हों। ऐसे स्थानों पर ठहरने वाले लोगों को अहल-ए-कुफूर कहा जाता है। यह भी कहा गया है कि कुफूर से मुराद दूर-दराज़ और एकांत में स्थित गाँव होते हैं।
A point is made about why Ḥamza recites ‘alayhumu’, ‘ilayhumu’ and ‘ladayhumu’ and does not recite ‘rabbiḥimu’, ‘fihim’ or ‘jannatuhum’, the answer is that in the first examples, a <i>yā</i>’ has replaced an <i>alif</i> and the root is “<i>alāhum</i>’, <i>ladāhum</i>’ and ‘<i>ilāhum</i>’ and therefore the <i>hā</i>’ keeps its <i>ḍammah</i>. That is not the case with the other examples.	अगर यह सवाल किया जाए कि इमाम हमज़ह «अलैहिमु», «इलैहिमु» और «लदैहिमु» को इस तरह क्यों पढ़ते हैं, लेकिन «रब्बिहिम्», «फ़ीहिम्» या «जन्नतुहुम्» को इस अंदाज़ में नहीं पढ़ते, तो इसका जवाब यह है कि पहली मिसालों में या (य) दरअसल अलिफ़ के बदले आई है, और उनकी अस्ल «अलाहुम्», «लदाहुम्» और «इलाहुम्» है। इसी वजह से उनमें हा अपनी ज़म्मह बरकरार रखती है। जबकि दूसरी मिसालों में ऐसा मामला नहीं है, इसलिए वहाँ यही इल्लत मौजूद नहीं पाई जाती।
it makes no difference to them	उनके लिए एकसाँ है।
The words ‘it makes no difference to them’ mean that it is the same to them whether or	"उन के लिए कोई फ़र्क नहीं पड़ता" से मुराद यह है कि आप उन्हें डराएँ या न डराएँ, दोनों बातें उन के नज़दीक

not you warn them.	यकसौँ हैं।
whether you warn them	"ख्वाह आप उन्हें डराएँ"
His words: 'whether you warn them' mean to announce and convey warning. The word used here for 'warn' (<i>andhara</i>) is almost only ever used to alarm people when there is time for them to take measures to avoid the thing they are being warned about. If the situation does not allow for such a time of preparation, it is called announcement (<i>ish'ār</i>) and not warning.	उन के इस फ़रमान "आप उन्हें डराएँ" का मतलब है: उन्हें ख़बरदार करना और अज़ाब से आगाह करना। यहाँ "इन्ज़ार" (डराने या ख़बरदार करने) का लफ़्ज़ इस्तेमाल हुआ है, और अरबी ज़बान में यह लफ़्ज़ आम तौर पर उसी वक़्त बोला जाता है जब लोगों को किसी आने वाले ख़तरे से आगाह किया जाए और उन्हें उससे बचने के लिए तैयारी या एहतियात का मौक़ा भी हासिल हो। लेकिन अगर सूरत-ए-हाल ऐसी हो कि तैयारी या बचाव का कोई वक़्त बाक़ी न रहे, तो उसे "इशआर" (महज़ इत्तिला देना या ख़बर पहुँचाना) कहा जाता है, "इन्ज़ार" नहीं कहा जाता।
Scholars disagree about the interpretation of this <i>āyah</i> . It is said to refer to people in general, indicating those against whom the decree of punishment will be carried out. It is an established fact that Allah already knows that these people will die in <i>kufr</i> . Allah	इस आयत की तफ़्सीर के बारे में उलमा का इख़्तिलाफ़ है। कहा गया है कि यह आम लोगों के बारे में है, यानी उन लोगों के बारे में जिन पर अज़ाब का फ़ैसला नाफ़िज़ हो चुका है। यह एक साबित-शुदा हक़ीक़त है कि अल्लाह तआला पहले ही जानता है कि ये लोग कुफ़्र की हालत में मरेंगे।

wanted to tell people about those whose state is like that without being specific.	अल्लाह तआला ने लोगों को उन अफ़राद के बारे में आगाह करना चाहा जिनका हाल ऐसा है, बग़ैर इसके कि किसी खास शख्स का नाम लेकर तअय्युन फ़रमाया जाए।
Ibn ‘Abbās and al-Kalbī said that the <i>āyah</i> was revealed about the leaders of the Jews in Madīnah, including Huyayy ibn al-Akhtab, Ka‘b ibn al-Ashraf and those like them. Ar-Rabī‘ ibn Anas said, ‘It’ was revealed about the leaders of the idolaters who were killed at Badr.’ The first position is sounder. Anyone who says it was revealed about a particular person can only be referring to someone whose <i>kufir</i> was revealed from the Unseen after his death. That is one aspect of the <i>āyah</i>.	इब्र अब्बास और अल-कलबी ने कहा है कि यह आयत मदीना के यहूदी सरदारों के बारे में नाज़िल हुई, जिनमें हुयय्य इब्र अल-अख़तब, कअब इब्र अल-अशरफ़ और उन जैसे दूसरे लोग शामिल थे। अर-रबी' इब्र अनस ने कहा: "यह आयत मुशरिकों के उन सरदारों के बारे में नाज़िल हुई जो बद्र में क़त्ल किए गए थे।" पहला क़ौल ज़्यादा दुरुस्त है। जो शख्स यह कहता है कि यह आयत किसी खास फ़र्द के बारे में नाज़िल हुई, उसकी मुराद सिर्फ़ ऐसा शख्स हो सकता है जिसके कुफ़्र पर मरने का इल्म बाद में ग़ैब की ख़बर के तौर पर ज़ाहिर हुआ हो। यह आयत के मआनी और पहलुओं में से एक पहलू है।
Allah has sealed up their hearts and their hearing and over their eyes is a blindfold. They will have a terrible	अल्लाह ने उनके दिलों और उनकी समाअत पर मुहर लगा दी है, और उनकी आँखों पर एक पर्दा पड़ा हुआ

punishment. [2:7]	है। और उनके लिए बहुत बड़ा अज़ाब है।[अल-बकरह: 7]
Allah has sealed up	"अल्लाह ने मुहर लगा दी है"
The words, '<i>Allah has sealed up</i>,' make it clear that in this <i>āyah</i> Allah debars such people from having faith. The word '<i>khatama</i>' (sealed up) means covering a thing and fastening it up so that nothing can enter it. It is used for letters and other such things so that what is inside them cannot be reached or replaced.	"अल्लाह ने मुहर लगा दी है" के अल्फ़ाज़ इस बात को वाज़ेह करते हैं कि इस आयत में अल्लाह तआला ऐसे लोगों को ईमान लाने से महरूम कर देता है। "खतमा" (मुहर लगा देना) का मअनी है किसी चीज़ को ढाँप देना और इस तरह बंद कर देना कि उसमें कोई चीज़ दाख़िल न हो सके। यह लफ़ज़ ख़ुतूत (पत्रों) और इसी तरह की दूसरी चीज़ों के बारे में भी इस्तेमाल होता है, ताकि उनके अंदर मौजूद चीज़ तक रसाई हासिल न की जा सके और न ही उसे तब्दील किया जा सके।
Interpreters say that, in His Book, Allah describes the hearts of the unbelievers as having ten qualities: as being sealed up, stamped, constricted, sick, rusted up, dead, hard, turning away, fanatically enraged and in denial. On being in denial, He says: '<i>Their</i>	मुफ़स्सिरीन कहते हैं कि अल्लाह तआला ने अपनी किताब में काफ़िरों के दिलों को दस सिफ़ात के साथ बयान किया है: मुहर लगे हुए, तबअ-शुदा, तंग, बीमार, ज़ंग-आलूद, मुर्दा, सख़्त, फिरे हुए, जाहिली तअस्सुब से भरे हुए, और इनकार करने वाले। इनकार करने वाले दिलों के बारे में

<i>hearts are in denial and they are puffed up with pride.</i>’ On fanatical rage: <i>‘When those who disbelieve filled their hearts with fanatical rage.’</i> On turning away: <i>‘Then they turn away. Allah has turned their hearts away because they are people who do not understand.’</i> On being hard: <i>‘Woe to those whose hearts are hardened against remembrance of Allah’</i> and: <i>‘Then your hearts became hardened after that.’</i> On being dead: <i>‘Someone who was dead and whom We brought to life.’</i> and: <i>‘Only those who can hear respond. As for the dead, Allah will raise them up.’</i> On being rusted up: <i>‘No indeed! Rather what they have earned has rusted up their hearts.’</i> On being sick: <i>‘Those with sickness in their hearts.’</i> On being constricted: <i>‘When He desires to misguide someone, He makes his breast narrow and constricted.’</i> On being stamped: <i>‘Their hearts’</i> have been stamped so that they do not understand’ and: <i>‘Allah has</i>	अल्लाह तआला फ़रमाता है: "उन के दिल इनकार में मुब्तला हैं और वे तकब्बुर से भरे हुए हैं।" जाहिली तअस्सुब के बारे में फ़रमाया: "जब काफ़िरों ने अपने दिलों में जाहिलियत का तअस्सुब भर लिया।" फिरे हुए दिलों के बारे में फ़रमाया: "फिर वे फिर गए, तो अल्लाह ने भी उनके दिल फेर दिए, क्योंकि वे ऐसे लोग हैं जो समझते नहीं।" सख़्त दिलों के बारे में फ़रमाया: "तबाही है उन लोगों के लिए जिनके दिल अल्लाह की याद से सख़्त हो गए हैं।" और फ़रमाया: "फिर इसके बाद तुम्हारे दिल सख़्त हो गए।" मुर्दा दिलों के बारे में फ़रमाया: "क्या वह शख्स जो मुर्दा था, फिर हमने उसे ज़िंदा कर दिया..." और फ़रमाया: "सिर्फ़ वही लोग क़बूल करते हैं जो सुनते हैं, और रहे मुर्दे, तो अल्लाह उन्हें
--	---

stamped them with kufr.' On being sealed up, He says: 'Allah has sealed up their hearts.' All will be explained in their proper place, Allah willing.	उठाएगा।" ज़ंग-आलूद दिलों के बारे में फ़रमाया: "हरगिज़ नहीं! बल्कि उनके आमाल ने उनके दिलों पर ज़ंग चढ़ा दिया है।" बीमार दिलों के बारे में फ़रमाया: "वे लोग जिनके दिलों में बीमारी है।" तंग दिलों के बारे में फ़रमाया: "और जिसे वह गुमराह करना चाहता है, उसका सीना तंग और घुटा हुआ कर देता है।" तबअ-शुदा (मुहर-शुदा) दिलों के बारे में फ़रमाया: "उनके दिलों पर मुहर कर दी गई है, लिहाज़ा वे समझते नहीं।" और फ़रमाया: "अल्लाह ने उनके कुफ़्र की वजह से उन पर मुहर लगा दी है।" और मुहर लगे हुए दिलों के बारे में फ़रमाया: "अल्लाह ने उनके दिलों पर मुहर लगा दी है।" इन तमाम उमूर की वज़ाहत, इंशा अल्लाह, अपनी-अपनी मुनासिब जगह
--	--

	पर बयान की जाएगी।
Sealing up can be physical, as we have made clear, and also spiritual as in this āyah. In respect of the heart, being sealed up entails the inability to absorb Allah's words, understand what He says and reflect on His āyahs. In respect of hearing, it entails the inability to understand the Qur'an when it is recited or to respond to the call to believe in the Oneness of Allah. The blindfold over the eyes entails the inability to be guided by means of reflecting on His creatures and the wondrous things He has made. This is what Ibn 'Abbās, Ibn Mas'ūd, Qatādah and others have said about this.	मुहर लग जाना जिस्मानी भी हो सकता है, जैसा कि हम पहले बयान कर चुके हैं, और रूहानी भी, जैसा कि इस आयत में मुराद है। दिल पर मुहर लगने का मतलब यह है कि इंसान अल्लाह के कलाम को क़बूल करने, उसके इरशादात को समझने और उसकी आयात में ग़ौर व फ़िक्र करने की सलाहियत से महरूम हो जाता है। समाअत पर मुहर लगने का मतलब यह है कि कुरआन की तिलावत सुनकर उसके मफ़हूम को न समझ सके और न ही अल्लाह की वहदानियत की दावत को क़बूल करने के लिए आमादा हो। आँखों पर पर्दा पड़ जाने का मतलब यह है कि इंसान अल्लाह की मख़लूक़ात और उसकी पैदा की हुई अजीब व ग़रीब निशानियों में ग़ौर व फ़िक्र करके हिदायत हासिल करने से महरूम हो जाए। यही तफ़्सीर इब्न अब्बास, इब्न मसऊद, क़तादा और दीगर उलमा से मनकूल है।
We find in this āyah definitive	हम इस आयत में इस बात की क़तई

proof of the fact that it is Allah Who is the author of guidance and misguidance, kufr and īman. So we can only be amazed at the obtuseness of the minds of the Qadariyyah who say that they are the authors of their own faith and guidance. The ‘sealing up’ referred to in the āyah is the stamp of kufr so how could someone subject to that come to have īmān, no matter how hard his striving was? Allah has sealed up their hearts and hearing and a blindfold has been placed over their eyes. How they going to be guided and who is going to guide them after Allah, when He has misguided them, made them deaf, and blinded their eyes. ‘And no one can guide those whom Allah misguides.’ That action of Allah is nevertheless just, since He does not place any real impediment in the way of those He misguides and disappoints preventing them from fulfilling those things which are obligatory for them. So the	दलील पाते हैं कि हिदायत और गुमराही, कुफ़र और ईमान का ख़ालिक़ अल्लाह तआला ही है। लिहाज़ा क़दरिय्या के इस नज़रिये पर तअज्जुब ही किया जा सकता है कि इंसान ख़ुद अपने ईमान और हिदायत का ख़ालिक़ है। आयत में मज़कूर "मुहर लगा देना" दरअसल कुफ़र की मुहर है। फिर जिस शख्स पर ऐसी मुहर लगा दी गई हो, वह ईमान कैसे ला सकता है, ख़्वाह वह कितनी ही कोशिश क्यों न करे? अल्लाह तआला ने उनके दिलों और समाअत पर मुहर लगा दी है और उनकी आँखों पर पर्दा डाल दिया है। फिर वे हिदायत कैसे पा सकते हैं? और जब अल्लाह तआला ने उन्हें गुमराह कर दिया, उनके कानों को हक़ सुनने से महरूम कर दिया और उनकी आँखों को अंधा कर दिया, तो अल्लाह के बाद कौन है जो उन्हें हिदायत दे सके? जैसा कि अल्लाह तआला फ़रमाता है: "और जिसे अल्लाह गुमराह कर दे, उसे कोई हिदायत देने वाला नहीं।" ताहम अल्लाह तआला का यह फ़ैअल सरासर अदल पर मबनी है, क्योंकि वह
---	--

attribute of justice is not negated. He denies them His grace, He does not prevent them doing what was obliged for them.	जिन लोगों को गुमराह करता है या अपनी तौफ़ीक़ से महरूम कर देता है, उनके रास्ते में कोई हक़ीक़ी रुकावट खड़ी नहीं करता जो उन्हें उन फ़राइज़ की अदायगी से रोक दे जो उन पर वाजिब किए गए हैं। इसलिए अल्लाह तआला की सिफ़त-ए-अद्ल में कोई कमी वाक़े नहीं होती। वह सिर्फ़ अपने फ़ज़ल और खुसूसी तौफ़ीक़ से महरूम करता है, लेकिन उन्हें उन आमाल से नहीं रोकता जो उन पर वाजिब करार दिए गए हैं।
Some say that the words ‘khatm’ (sealing), ‘ṭab’ (stamping) and ‘ghishāwah’ (covering) are used metaphorically and are really a way of designating them as unbelievers, judging them to be unbelievers, and reporting that they are unbelievers and are not to be taken as retaining their literal meaning. We say that this is not the case because the reality of this sealing and stamping is an action by which the heart actually becomes sealed and stamped, so it is not correct to take it	बाज़ लोगों का कहना है कि "ख़त्म" (मुहर लगाना), "तबअ" (मुहर सब्त करना) और "ग़िशवह" (पर्दा डालना) मज़ाज़ी अल्फ़ाज़ हैं, और इनसे मुराद सिर्फ़ यह है कि उन लोगों को काफ़िर करार दिया गया है, उन पर कुफ़्र का हुक्म लगाया गया है, या उनके काफ़िर होने की ख़बर दी गई है। इन अल्फ़ाज़ को उनके हक़ीक़ी मअनी पर महमूल नहीं किया जाना चाहिए। हम कहते हैं कि यह बात दुरुस्त नहीं, क्योंकि इस मुहर लगाने और तबअ करने की हक़ीक़त एक ऐसा अमल है जिसके नतीजे में दिल वाक़ई मुहरज़दा और बंद हो जाता है, लिहाज़ा उसे महज़

metaphorically. Do you not see that when it is said, 'So-and-so stamped the book and sealed it,' it means that the book in question is actually stamped and sealed, not designated or judged. There is no disagreement concerning this among people with knowledge of the language, and the whole community agree that Allah Almighty has described Himself as sealing and stamping the hearts of the unbelievers to repay them for their disbelief, as He says: 'Allah has stamped them with disbelief.' So the sealing and stamping are something that Allah does to a heart which prevents faith entering it. There is evidence for this in His words: 'In that way We insert it into the evildoers' hearts. They do not believe in it' and He says: 'We have placed covers on their hearts, preventing them from understanding it.'	मज़ाज़ पर महमूल करना सही नहीं। क्या तुम नहीं देखते कि जब कहा जाता है: "फलाँ शख्स ने किताब पर मुहर लगा दी और उसे बंद कर दिया" तो इसका मतलब यह होता है कि किताब हकीकतन मुहरबंद कर दी गई है, न कि सिर्फ़ उसे ऐसा करार दिया गया है या उसके बारे में कोई हुक्म लगाया गया है। अहल-ए-ज़बान के दरमियान इस बारे में कोई इख़िलाफ़ नहीं। इसी तरह पूरी उम्मत का इत्तिफ़ाक़ है कि अल्लाह तआला ने अपने आप को काफ़िरों के दिलों पर मुहर लगाने और उन्हें तबअ करने वाला बयान किया है, और यह उनके कुफ़्र के बदले में है, जैसा कि अल्लाह तआला फ़रमाता है: "अल्लाह ने उनके कुफ़्र के सबब उन पर मुहर लगा दी है।" लिहाज़ा मुहर लगाना और तबअ करना एक ऐसा अमल है जो अल्लाह तआला दिल पर करता है, जिसके नतीजे में ईमान उसमें दाख़िल नहीं हो पाता। इसकी ताईद अल्लाह तआला के इस फ़रमान से भी होती है: "इसी तरह हम उसे मुजरिमों के दिलों
--	---

	में दाखिल करते हैं, मगर वे उस पर ईमान नहीं लाते।" और एक और मक़ाम पर फ़रमाया: "और हमने उनके दिलों पर पर्दे डाल दिए हैं, ताकि वे उसे समझ न सकें।"
their hearts	"उन के दिल"।
Putting the heart first indicates the excellence of the heart over all other limbs and faculties. The core and noblest part of anything is its heart. The heart is the locus of reflection. The Arabic word for heart, <i>qalb</i>, is a verbal noun meaning to turn something over completely so that it is returned to how it was at the beginning. 'Qalaba' (to turn) a vessel is to turn it upside down. Then this image is transferred and used for this organ, the noblest part of the creature, owing to the speed with which thoughts revolve in it. It is as is said by the poet:	दिल को सबसे पहले ज़िक्र करना इस बात की दलील है कि दिल तमाम दूसरे अज़ा और कुव्वतों पर फ़ज़ीलत रखता है। किसी भी चीज़ का सबसे अहम और शरीफ़ हिस्सा उसका दिल होता है। दिल ग़ौर व फ़िक्र का मरकज़ है। अरबी में दिल के लिए इस्तेमाल होने वाला लफ़्ज़ "क़ल्ब" दरअसल एक मस्दर है, जिसका मतलब है किसी चीज़ को पूरी तरह उलट-पलट देना, यहाँ तक कि वह अपनी पहली हालत की तरफ़ लौट आए। "क़लबा" (उलटना) किसी बर्तन को उलट देने के लिए कहा जाता है, यानी उसे मुँह के बल पलट देना। फिर यही तसव्वुर मुन्तक़िल होकर इंसान के इस अज़ीम और शरीफ़ उज़्व (अंग) के लिए इस्तेमाल होने लगा, क्योंकि इसमें ख़यालात और विचार बहुत तेज़ी से करवट बदलते और घूमते

	रहते हैं। जैसा कि एक शायर ने कहा है:
The heart is only called 'qalb' because of its revolving (taqallub), so beware of turning and change in the heart.	दिल को "क़ल्ब" सिर्फ़ इस लिए कहा जाता है कि वह मुसलसल पलटता और बदलता रहता है, लिहाज़ा दिल के बदलने और उसके इन्क़िलाब से होशियार रहो।
Ibn Mājah reported from Abū Mūsā al-Ash'arī that the Prophet ﷺ said, 'The metaphor of the heart is that of a feather moved by the' winds in the desert.' This is the meaning which the Prophet ﷺ expressed when he said, 'O Allah, Who makes hearts firm, make our hearts firm in Your obedience.' If the Prophet ﷺ, in spite of his immense worth and exalted station, said that, then it is even more fitting for us to say it in imitation of him. Allah Almighty says: 'Know that Allah intervenes between a man and his heart.'	इब्न माजह ने अबू मूसा अल-अशअरी से रिवायत किया है कि नबी ﷺ ने फ़रमाया: "दिल की मिसाल उस पर (पंख) की तरह है जिसे रेगिस्तान में हवाएँ इधर-उधर उड़ाती रहती हैं।" यही वह मअनी है जिसे नबी ﷺ ने अपने इस क़ौल में बयान फ़रमाया: "ऐ अल्लाह! दिलों को साबित-क़दम रखने वाले, हमारे दिलों को अपनी इताअत पर साबित-क़दम रख।" यदि नबी ﷺ ने, अपनी अज़ीम शान, बुलंद मक़ाम और महान दर्जे के बावजूद, यह दुआ फ़रमाई ,तो हमारे लिए और भी ज़्यादा मुनासिब है कि हम उनकी पैरवी में यह दुआ करें। अल्लाह तआला फ़रमाता है: "जान लो कि अल्लाह आदमी और

	उसके दिल के बीच में हाइल हो जाता है।"
Even though the limbs follow the heart and it is their leader and master, they nevertheless affect it, because the actions they perform make a connection between the outward and the inward. The Prophet ﷺ said, 'A man gives <i>sadaqah</i> and a white spot is engraved in his heart. A man lies and his heart goes black.' At-Tirmidhī reports as a sound hadith from Abū Hurayrah: 'A man may commit a sin and his heart becomes black. If he repents, his heart is polished.' He said, 'That is the rust which Allah mentions in the Qur'an when He says: "No indeed! Rather what they have earned has rusted up their hearts."' Mujāhid said, 'The heart is like a hand which holds a sin with every finger and then is sealed.' The Prophet ﷺ said, 'There is a lump of flesh in the body. When it is sound, the entire body is sound, and when	अगरचे अज़ा दिल के ताबे होते हैं और दिल उनका क़ाइद और हाकिम होता है, फिर भी ये अज़ा दिल पर असरअंदाज़ होते हैं, क्योंकि उनके आमाल ज़ाहिर और बातिन के दरमियान एक तअल्लुक़ पैदा करते हैं। नबी करीम ﷺ ने फ़रमाया: "एक आदमी सदक़ा देता है तो उसके दिल में एक सफ़ेद निशान सब्त कर दिया जाता है, और एक आदमी झूठ बोलता है तो उसका दिल सियाह हो जाता है।" इमाम तिर्मिज़ी ने अबू हुरैरा रज़ियल्लाहु अन्हु से एक हसन हदीस रिवायत की है कि नबी ﷺ ने फ़रमाया: "आदमी एक गुनाह करता है तो उसके दिल पर एक सियाह नुक्ता पड़ जाता है। फिर अगर वह तौबा कर ले तो उसका दिल साफ़ कर दिया जाता है।" फिर आप ﷺ ने फ़रमाया: "यही वह ज़ंग है जिसका ज़िक्र अल्लाह तआला ने कुरआन में किया है, जब उसने फ़रमाया: 'हरगिज़ नहीं! बल्कि उनके आमाल ने उनके दिलों पर ज़ंग

it is corrupt, the entire body is corrupt – it is the heart.’ This indicates that ‘sealing’ is real, and Allah knows best.	चढ़ा दिया है।” मुजाहिद रहिमहुल्लाह ने कहा: "दिल एक हाथ की मानिंद है जो हर उंगली के साथ एक गुनाह को पकड़ लेता है, फिर उस पर मुहर लगा दी जाती है।" नबी करीम ﷺ ने फ़रमाया: "बेशक जिस्म में गोश्त का एक टुकड़ा है, जब वह दुरुस्त हो तो पूरा जिस्म दुरुस्त हो जाता है, और जब वह ख़राब हो जाए तो पूरा जिस्म ख़राब हो जाता है। ख़बरदार! वह दिल है।" यह सब इस बात की दलील है कि "मुहर लगाना" एक हकीक़ी अम्र है, और अल्लाह तआला ही बेहतर जानता है।
Muslim relates a hadith from Hudhayfah: ‘The Messenger of Allah ﷺ related two hadiths to us. I have seen one of them come true and am still waiting for the other. He related to us that the quality of trustworthiness had descended into the hearts of men. Then the Qur’an came down and they knew it from the Qur’an	इमाम मुस्लिम ने हज़रत हुज़ैफ़ा रज़ियल्लाहु अन्हु से रिवायत किया है कि उन्होंने फ़रमाया: "रसूलुल्लाह ﷺ ने हमसे दो बातें बयान फ़रमाईं। उनमें से एक को मैंने पूरा होते देख लिया है, और दूसरी का अभी इंतज़ार कर रहा हूँ।" आप ﷺ ने हमें बताया कि: "अमानतदारी (अमानत) लोगों के दिलों

and they knew it from the Sunnah. Then he related that trustworthiness would be removed and he said, "A man will go to sleep and trustworthiness will be taken from his heart and its trace will remain like a small scar. Then he will go to sleep and trustworthiness will be taken from his heart and its trace will remain like a superficial blister, such as you see when an ember rolls onto someone's foot and it blisters up." Then he took some pebbles and rolled them onto his foot. "And people will continue to trade but practically no one will fulfil his trust to such a point that it will be said, 'There is a trustworthy man among the Banū so-and-so!' and until it will be said of a man 'How tough he is! How elegant! How intelligent!' when he does not have even a speck of belief in his heart." There was a time when I did not care whom I did business with. If he was a Muslim, his

में उतारी गई थी। फिर कुरआन नाज़िल हुआ, तो लोगों ने अमानत का इल्म कुरआन से हासिल किया और सुन्नत से भी उसे जाना।"

फिर आप ﷺ ने अमानत के उठा लिए जाने का ज़िक्र करते हुए फ़रमाया:

"एक आदमी सोएगा तो उसके दिल से अमानत निकाल ली जाएगी, और उसका एक हल्का-सा निशान बाक़ी रह जाएगा। फिर वह सोएगा तो अमानत मज़ीद निकाल ली जाएगी, और उसका असर एक छाले की तरह बाक़ी रह जाएगा, जैसे तुम देखते हो कि कोई अंगारा किसी के पाँव पर लुढ़क जाए तो वहाँ छाला पड़ जाता है।"

फिर नबी ﷺ ने चंद कंकड़ियाँ लीं और उन्हें अपने पाँव पर लुढ़काया (ताकि मिसाल वाज़ेह हो जाए)।

इसके बाद फ़रमाया:

"लोग ख़रीद-ओ-फ़रोख़्त करते रहेंगे, लेकिन क़रीब होगा कि कोई भी अमानत अदा करने वाला न मिले, यहाँ तक कि कहा जाएगा: 'फ़लाँ क़बीले में एक अमानतदार आदमी है।' और किसी शख़्स के बारे में कहा जाएगा: 'यह कितना मज़बूत, कितना बाक़ार और कितना अक्लमंद है!' हालाँकि

dīn was sufficient assurance for me, and if he was a Christian or a Jew, his Muslim patron was sufficient assurance for me. Today I only do business with so-and-so and so-and-so among you.'	उसके दिल में राई के दाने के बराबर भी ईमान नहीं होगा।" हज़रत हुज़ैफ़ा रज़ियल्लाहु अन्हु फ़रमाते हैं: "एक ज़माना था कि मुझे इस बात की परवाह नहीं होती थी कि मैं किस के साथ लेन-देन कर रहा हूँ। अगर वह मुसलमान होता तो उसका दीन मेरे लिए काफ़ी ज़मानत था, और अगर वह यहूदी या नस्रानी होता तो उसका मुसलमान सरपरस्त मेरे लिए काफ़ी ज़मानत था। लेकिन आज मैं तुम में से सिर्फ़ चंद मख़सूस लोगों के साथ ही लेन-देन करता हूँ।"
Hudhayfah said that he heard the Messenger of Allah ﷺ say, 'Trials will come upon the hearts, following one after another like the reeds in a woven mat. Any heart which opens the door to them will have a black mark put in it. A heart which rejects them will have a white mark put in it. Thus hearts will be of two kinds: those which are white like marble, which will not be harmed by trial as long as the heavens and the earth endure,	हज़रत हुज़ैफ़ा रज़ियल्लाहु अन्हु बयान करते हैं कि उन्होंने रसूलुल्लाह ﷺ को यह फ़रमाते हुए सुना: "फ़ितने दिलों पर एक के बाद एक इस तरह पेश किए जाएंगे जैसे चटाई के तिनके एक दूसरे में बुने हुए होते हैं। जिस दिल ने इन फ़ितनों को क़बूल कर लिया, उसमें एक सियाह निशान डाल दिया जाएगा, और जिस दिल ने उन्हें रद्द कर दिया, उसमें एक सफ़ेद निशान डाल दिया जाएगा।" फिर दिल दो किस्म के हो जाएंगे:

and those which are black and dust-coloured like an upset earthen jug, not recognising what is right or rejecting what is wrong, totally permeated by base desires.'	एक वे दिल जो सफ़ेद पत्थर (या चमकदार संग-ए-मरमर) की तरह होंगे, उन्हें कोई फ़ितना नुक़सान नहीं पहुँचा सकेगा जब तक आसमान और ज़मीन क़ायम हैं। और दूसरे वे दिल जो सियाह और मिटियाले होंगे, उल्टे रखे हुए मटके की मानिंद। वे न किसी नेकी को नेकी समझेंगे और न किसी बुराई को बुराई जानेंगे, बल्कि उन पर ख़्वाहिशात-ए-नफ़्स का मुकम्मल ग़लबा होगा।
The heart is sometimes referred to by the word <i>fu'ād</i> and also the term <i>ṣadr</i> (breast). Allah Almighty says: "<i>It is so that We can fortify your heart (fu'ād) by it.</i>" He says: '<i>Did We not expand your breast (ṣadr) for you?</i>' .In both places it is the heart which is meant. The heart is also often equated with the intellect. Allah Almighty says: "<i>There is a reminder in that for anyone who has a heart</i>" meaning intelligence, because the heart is the locus of the intellect according to most authorities. <i>Fu'ād</i> is the locus of the <i>qalb</i> and the breast is the	दिल को बअज़ औक़्ात "फ़ुअाद" और बअज़ औक़्ात "सद्र" (सीना) के लफ़्ज़ से भी ताबीर किया जाता है। अल्लाह तआला फ़रमाता है: "ताकि हम उसके ज़रिये आपके फ़ुअाद (दिल) को मज़बूत करें।" (अल-फ़ुरक़ान: 32) और फ़रमाता है: "क्या हमने आपके लिए आपका सीना कुशादा नहीं कर दिया?" (अश-शर्ह: 1) इन दोनों मक़ामात पर दिल ही मुराद है। दिल को अकसर अक्ल के मअनी में भी इस्तेमाल किया जाता है।

locus of the <i>fu'ād</i>. Allah knows best.	अल्लाह तआला फ़रमाता है: "बेशक इसमें नसीहत है उस शख्स के लिए जिसके पास दिल हो।" यानी जिसके पास अक़ल व फ़हम हो, क्योंकि अकसर उलमा के नज़दीक अक़ल का मरकज़ दिल ही है। फुअाद, क़ल्ब का महल्ल है, और सद्र (सीना), फुअाद का महल्ल है। और अल्लाह तआला ही बेहतर जानता है।
and their hearing	"और उनकी समाअत"
The fact that hearing comes before sight in this <i>āyah</i> is used as evidence by those who say that hearing is better than vision. Allah also says: 'Say: "What do you think? If Allah took away your hearing and your sight..."' He says: 'He gave you hearing, sight and hearts.' This is said to be because hearing is always receptive from every direction, both in light and darkness, while sight is only effective in one direction at a time and needs light to function.	इस आयत में समाअत (सुनने) का ज़िक्र बिसारत (देखने) से पहले आने को बअज़ उलमा इस बात की दलील बनाते हैं कि समाअत, बिसारत से अफ़ज़ल है। अल्लाह तआला एक और मक़ाम पर फ़रमाता है: "कहो: भला तुम बताओ, अगर अल्लाह तुम्हारी समाअत और तुम्हारी बीनाई छीन ले..." और फ़रमाया: "उसने तुम्हें समाअत, बिसारत और दिल अता किए।" कहा जाता है कि समाअत को मुक़द्दम

However, most people put sight above hearing because hearing only perceives sounds and words, while sight perceives bodies, colours and all forms. They said, 'Something which embraces more things is better.'	रखने की वजह यह है कि कान हर सिम्त से आवाज़ वसूल करते हैं, ख्वाह रोशनी हो या अँधेरा, जबकि आँख एक वक़्त में सिर्फ़ एक सिम्त में देखती है और उसे काम करने के लिए रोशनी की ज़रूरत होती है। ताहम अकसर लोगों के नज़दीक बिसारत, समाअत से अफ़ज़ल है, क्योंकि समाअत सिर्फ़ आवाज़ों और अल्फ़ाज़ को महसूस करती है, जबकि बिसारत अजसाम, रंगों और मुख्तलिफ़ शक़लों को भी देखती और पहचानती है। उनका कहना है: "जो चीज़ ज़्यादा अशिया का इदराक करती हो, वह ज़्यादा बेहतर और बरतर होती है।"
If it is asked why 'sight' is in the plural and 'hearing' in the singular, the answer is that it is in the singular because <i>sam'</i> (hearing) is a verbal noun which can be used for both a little and a lot. It is also used as a noun for the part of the body that hears. When it is used in the plural, it indicates the individual hearing of a group of people. It is possible that it	अगर यह सवाल किया जाए कि "बिसारत" को जमअ के सीरो में और "समाअ" (समाअत) को वाहिद के सीरो में क्यों ज़िक्र किया गया है, तो इसका जवाब यह है कि "सम्अ" दरअसल मस्दर है, और मस्दर अरबी में क़लील और कसीर दोनों के लिए इस्तेमाल हो सकता है। इसी तरह "सम्अ" उस उज़्व (कान) के लिए भी इस्तेमाल होता है जिसके ज़रिये

means 'the sites of their hearing' because 'hearing' is not sealed up, but the site of hearing is sealed up. <i>Sam'</i> can also mean the function of hearing. <i>Sim'</i> is mentioning someone well. It is also a wolf born from a hyena.	सुना जाता है। जब इसे जमअ के सीरो में इस्तेमाल किया जाए तो इससे मुराद एक जमाअत के अफ़राद की अलग-अलग समाअतें होती हैं। यह भी मुमकिन है कि इससे मुराद "उनकी समाअत के मक़्ामात" हों, क्योंकि हक्कीक़त में समाअत पर मुहर नहीं लगती बल्कि समाअत के मक़्ाम (यानी कान या उसकी कुव्वत) पर मुहर लगाई जाती है। "सम्अ" से मुराद सुनने की कुव्वत और सलाहियत भी हो सकती है। जबकि "सिम्अ" का एक मअनी किसी का अच्छे अल्फ़ाज़ में ज़िक्र करना भी है। और अरबी लुगात में "सिम्अ" उस भेड़िए को भी कहा जाता है जो लकड़बग्घे से पैदा हुआ हो।
and over their eyes is a blindfold.	"और उनकी आँखों पर एक पर्दा है।"
The pronoun 'their' applies to those whom Allah knows will not believe among the unbelievers of Quraysh, or to the hypocrites or the Jews, or	ज़मीर "उन की" से मुराद वे लोग हैं जिनके बारे में अल्लाह तआला जानता है कि वे ईमान नहीं लाएँगे, ख़्वाह वे कुरैश के काफ़िर हों, या मुनाफ़िक़ीन हों, या यहूद हों। ताहम ज़्यादा दुरुस्त

to all unbelievers, which is more correct because it is universal. The seal is what covers hearts and hearing and the blindfold covers the eyes. The word used for blindfold is <i>ghishā'</i> which simply means a covering. From it comes <i>ghashiyah</i>, a saddle cover, so-called because it goes right over it.	क़ौल यह है कि इससे मुराद तमाम काफ़िर हैं, क्योंकि आयत का मफ़हूम आम और जामेअ है। मुहर वह चीज़ है जो दिलों और समाअत पर पर्दा डालती है, जबकि ग़िशावह (पर्दा) आँखों को ढाँपने वाली चीज़ है। "ग़िशावह" का लफ़्ज़ अस्ल में हर उस चीज़ के लिए इस्तेमाल होता है जो किसी चीज़ को ढाँप ले। इसी माद्दे से "ग़ाशियह" का लफ़्ज़ बना है, जो ज़ीन या कजावे पर डाले जाने वाले ग़िलाफ़ (ढाँपने वाली चादर) के लिए इस्तेमाल होता है, क्योंकि वह उसे मुकम्मल तौर पर ढाँप लेता है।
Some commentators say that the covering applies to the hearing and the eyes and that it is only the hearts which are sealed. Others say that the seal covers all of them and that blindfold is another way of saying seal.	बअज़ मुफ़स्सिरीन का कहना है कि पर्दा (ग़िशावह) समाअत और आँखों दोनों पर है, जबकि मुहर सिर्फ़ दिलों पर लगाई गई है। दूसरे मुफ़स्सिरीन कहते हैं कि मुहर इन सब पर लगाई गई है, यानी दिलों, समाअत और आँखों पर, और "ग़िशावह" (पर्दा) दरअसल मुहर ही के मअनी को दूसरे अंदाज़ में बयान करने का एक तरीक़ा है।
They will have a terrible	"और उनके लिए बहुत बड़ा अज़ाब है।"

punishment. ‘They’ here refers to the unbelievers who deny the ‘terrible punishment’ they are going to receive. The word ‘punishment’ (<i>‘adhāb</i>) includes things like whipping, burning with fire, cutting with steel and other things which inflict pain and suffering on a person. In the Qur’an we find: <i>‘A number of believers should attend their punishment.’</i> The word is derived from a root meaning imprisonment and prevention. Linguistically one can say, ‘I will punish him,’ meaning restrain him. The same root is used for the sweetness (<i>‘adhūbah</i>) of water because it becomes sweet by being confined in a vessel so that it is pure and separated from what it is mixed with. We also find it used in the words of ‘Alī, ‘Keep (<i>a‘dhibū</i>) your women from going out.’ Punishment is called that	यहाँ "वह" से मुराद वह काफ़िर हैं जो उस "सख्त अज़ाब" का इनकार करते हैं जो उन्हें मिलने वाला है। लफ़्ज़ "अज़ाब" में ऐसी तमाम सज़ाएँ शामिल हैं जो इंसान को दर्द और तकलीफ़ पहुँचाती हैं, जैसे कोड़े मारना, आग में जलाना, लोहे के ज़रिये काटना, और दीगर वह चीज़ें जो इंसान के लिए अज़ीयत और मशक्क़त का सबब बनती हैं। कुरआन में आता है: "और चाहिए कि मोमिनों की एक जमाअत उनकी सज़ा के वक़्त मौजूद रहे।" यह लफ़्ज़ एक ऐसे मूल शब्द से निकला है जिसका अर्थ है क़ैद करना और रोकना। अरबी भाषा में कहा जाता है: "मैं उसे अज़ाब दूँगा", अर्थात मैं उसे रोकूँगा या बाँध दूँगा। इसी मूल शब्द से पानी की मिठास (उज़ूबह) का लफ़्ज़ भी बना है, क्योंकि पानी बर्तन में महफूज़ और सीमित रखे जाने की वजह से मीठा, साफ़ और दूसरी मिलावटों से अलग हो जाता है। इसी तरह का यह कथन भी मिलता है: "अपनी औरतों को बाहर निकलने से
---	--

because the person being punished is held and kept from everything which is conducive to his comfort and afflicted with the opposite.	रोको (अअधिबू)।" सज़ा को अज़ाब इसलिए कहा जाता है क्योंकि जिस व्यक्ति को सज़ा दी जाती है, उसे उन तमाम चीज़ों से रोक दिया जाता है जो उसके आराम और सुख का कारण होती हैं, और उसे उनकी विपरीत तकलीफ़ और परेशानी में डाल दिया जाता है।
---	---